्वं व्यावसायिक निर्देशन

nal & Vocational Guidance

ोमप्रकाश गुप्त : प्र. दा. हस्तक

प्रज्ञा प्रकाशन

अलखसागर रोड, बीकानेर

पूर्वा

श्री ओमप्रकाश गुप्त तथा श्री प्र. दा. हस्तक द्वारा लिखित 'शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन' पुस्तक का अवलोकन करने तथा पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ।

निर्देशन के क्षेत्र में आंग्ल भाषा में लिखित पुस्तकों की बाढ़ सी आई है किन्तु हिन्दी में इनका नितान्त अभाव है। प्रस्तुत पुस्तक में शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन के महत्वपूर्ण पहलुओं पर सुचारु रूप से प्रकाश डाला गया है। लेखकों का यह प्रयास प्रशंसनीय है और इस विषय की पुस्तकों की कमी को पूरा करने में सफल होगा। लेखकों को इसके लिए मैं बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि प्रस्तुत पुस्तक शालाओं, पुस्तकालयों, अध्यापकों तथा अभिभावकों के लिए समान रूप से उपयोगी और लाभप्रद सिद्ध होगी।

शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन,
बीकानेर

चन्द्रशेखर भट्ट,
सं. निदेशक

आमुख

ाक्षा सम्बन्धी सभी कार्यक्रमो में चाहे उनका सम्बन्ध प्रारम्भिक शिक्षा
या उच्च शिक्षा से—निर्देशन का अपना विशेष स्थान है। निर्देशन
थियो की व्यक्तिगत विभिन्नताओ को ध्यान मे रखकर उन्हे अपनी शारी-
वस्था, योग्यता, क्षमता, कार्य आदि के अनुसार भिन्न-भिन्न कार्यक्रम
ने में सहायता करता है। शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम को सफल बनाने हेतु
निर्देशन दिया जाय, बालक के व्यक्तिगत विकास के लिए आवश्यक तथा
ध साधनों का उचित उपयोग किया जाय एव समाज में परिवर्तन के
जो जटिल परिस्थिति उत्पन्न हुई है उसे सुलझाने मे सहायता दी जाय,
निर्देशन का मुख्य ध्येय है।

शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन विषय पर हिन्दी में कोई उपयुक्त पुस्तक
है जिसको पढ़कर सर्वसाधारण अध्यापक या समाज का सामान्य व्यक्ति
न के तत्वो को अच्छी प्रकार समझ सके। जो भी पुस्तकें उपलब्ध हैं वे
या बी. एड., बी. टी आदि के पाठ्यक्रम को ध्यान मे रखकर परीक्षार्थियो
भार्थ लिखी गयी हैं। अतः उनकी भाषा का कुछ क्लिष्ठ एवं तकनीकी
स्वाभाविक है। परिणामतः उनकी विषयवस्तु सामान्य जन एवं अध्यापक
पयोग की नहीं होती है। इन सभी बातो को ध्यान मे रखकर यह पुस्तक
ही सरल भाषा में तथा सर्वसाधारण के लाभार्थ लिखी गयी है। यदि
पक तथा अन्य बन्धुओं ने इसे पढ़कर लाभ उठाया तो इसे लिखने का
सार्थक होगा। यही लेखको की हार्दिक इच्छा है।

हिन्दी में अपनी तरह का यह पहला प्रयास होने से इसमें कई कमियो
स्वाभाविक है। अतः सुधार हेतु सुझाव सहर्ष आमन्त्रित हैं और उन्हें
तापूर्वक स्वीकार किया जायगा।

ओमप्रकाश गुप्त,
प्र. दा. हस्तक

ामेर

वर्तमान युग में निर्देशन की आवश्यकता

वर्तमान युग में व्यक्ति को मार्गदर्शन (निर्देशन) की अत्यन्त आवश्यकता है। निम्नलिखित मुख्य कारण मार्गदर्शन की आवश्यकता को अधिक स्पष्ट करते हैं :—

(१) व्यक्ति के दृष्टिकोण से मार्गदर्शन की आवश्यकता

वर्तमान युग विज्ञान का युग है अतः व्यक्ति का जीवन अधिक जटिल बन गया है। मानव जीवन में आवश्यकताओं की संख्या बढ़ी है। देश में हजारों की संख्या में नये उद्योग-धन्धे स्थापित किये जा रहे हैं तथा मनुष्य का कार्यक्षेत्र विस्तृत हुआ है। व्यक्तिगत सम्पर्क का क्षेत्र भी बढ़ गया है। ऐसी स्थिति में मनुष्य अपने को एक अजीब अवस्था में पाता है। अतः सरल मार्ग ढूंढने हेतु योग्य व्यक्तियों के मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

(२) सामाजिक दृष्टिकोण से मार्गदर्शन की आवश्यकता

(अ) देश में इस समय शिक्षित बेकारी, गरीबी, निम्न जीवन-स्तर तथा भुखमरी दिखाई देती है। बम्बई, कलकत्ता आदि बड़े नगरों में, जहां कारखाने आदि हैं, वहां पर गन्दी बस्तियों हैं। समाज के इस वातावरण के कारण बाल-अपराध, समस्यात्मक छात्र आदि को अधिक बढ़ावा मिलता है। इनके निराकरण के लिये उपयुक्त मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

(आ) हमारे देश मे तीव्र गति से आबादी बढ रही है। अतः बढ़ती हुई आबादी के साथ अनेक प्रकार की वैयक्तिक विभिन्नता वाले व्यक्ति समाज मे आते जा रहे हैं। इन सब व्यक्तियों को समाज मे समायोजित करने के लिये उपयुक्त मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

(इ) देश में नये-नये उद्योगों की संख्या बढ़ रही है। अतः इनमें काम करने वाले व्यक्तियों की विशेषतः क्षमता, योग्यता वाले व्यक्तियों की जरूरत है। इस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी के लिये सुसंगठित मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

(ई) देश में पूरा समाज बदलता हुआ दिखाई देता है। ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले व्यक्ति शहरों में आ रहे हैं। उनके बच्चे अध्ययन के लिये या अन्य कार्य-धन्धा करने हेतु देश के अन्य स्थानों में जा रहे हैं। ऐसी अवस्था में नये वातावरण से समायोजन करना कठिन कार्य है। रहन-सहन, भोजन, फैशन आदि सभी में परिवर्तन हो गया है एवं हो रहा है। अतः इन सभी परिस्थितियों में से अपने जीवन को सफल बनाने हेतु उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

(३) शिक्षा के दृष्टिकोण से

अपने गणराज्य में "निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा है" तथा प्रत्येक बालक को अपनी इच्छा के अनुसार शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है। शिक्षा किसी एक विशिष्ट समूह के लिये नहीं है। यद्यपि कौन-सा छात्र किस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने के अधिक योग्य है, इसकी जानकारी केवल उचित मार्गदर्शन से ही मिलती है। अतः मार्गदर्शन की बड़ी आवश्यकता है।

देश में बहुउद्देशीय शिक्षा प्रणाली है अतः ऐसी स्थिति में भी योग्य विषय हेतु छात्रों को मार्गदर्शन की आवश्यकता है। तकनीकी, औद्योगिक संस्थाएँ तथा अन्य शिक्षा सम्बन्धी संस्थाएँ इतनी हैं कि किसी एक छात्र को उनके सम्बन्ध में (विषय, शैक्षिक योग्यता आदि) विस्तृत जानकारी नहीं होती अतः मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

मार्गदर्शन का अर्थ

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में कभी न कभी मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। मार्गदर्शन का अर्थ व्यक्ति को उसके जीवन भर स्वयं अपने साथ लेकर चलता नहीं है। मार्गदर्शन द्वारा एक व्यक्ति का दृष्टिकोण दूसरे व्यक्ति पर नहीं लादना चाहिये। मार्गदर्शन दूसरे व्यक्ति के लिये किया जाने वाला निर्णय नहीं है। व्यक्ति को निर्णय स्वयं करना चाहिये। वास्तविक रूप से मार्गदर्शन ऐसी सहायता है जो व्यक्तिगत रूप से योग्य और पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित पुरुषों या महिलाओं द्वारा किसी भी आयु के व्यक्ति के लिए उसके जीवन के कार्यों का प्रबन्ध करने, उसके अपने दृष्टिकोण का विकास करने, अपना निजी निर्णय करने और अपना स्वयं का भार उठाने के हेतु उपलब्ध की जाती है।

जब कभी किसी व्यक्ति को ज्ञान, भावनात्मक योग्यता, मानसिक प्रखरता, सामाजिक तालमेल अथवा व्यावसायिक दक्षता तथा नौकरी सम्बन्धी सन्तोष प्राप्त करने में किसी अन्य व्यक्ति से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सहायता प्राप्त होती है तो किसी-न-किसी प्रकार के मार्गदर्शन को सक्रिय समझना चाहिये। परिणामत: मार्गदर्शन का कार्य व्यक्ति की विचार करने तथा कार्य करने की शक्ति को बढ़ा देता है।

वयस्क व्यक्ति अपने आचरण द्वारा युवकों के जीवन का निरन्तर मार्गदर्शन कर रहे हैं तथा भविष्य में करते रहेंगे।

निर्देशन किस प्रकार तथा किस रूप में किया जाय? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए मार्गदर्शन क्या है इस संबंध में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है।

परिभाषाएँ

(१) ओनेरिम्स : "मार्गदर्शन का अर्थ है कि जॉन को उसकी शक्तियों का ज्ञान कराने में सहायता करना जिससे वह स्वयं अपनी शक्तियों को पहचान सके।"

(२) युनाइटेड स्टेट्स ऑफिस ऑफ एजूकेशन ने लिखा है : "मार्गदर्शन एक ऐसी क्रिया है जिसमे व्यक्ति का परिचय विभिन्न साधनो से कराया जाता है जिनमे विशेष प्रशिक्षण भी सम्मिलित है तथा जिनके माध्यम से व्यक्ति अपनी नैसर्गिक शक्तियो को ढूढ़ सके, जिससे कि वह अधिकतम व्यक्तिगत हित एवं सामाजिक हित कर सके।"

(३) चाईशोम : "मार्गदर्शन का उद्देश्य व्यक्ति मे विद्यमान तथा रचनात्मक नेतृत्व की समस्याओ को हल करने मे अन्तर्दृष्टि का विकास करना है जिससे वह अपने जीवन काल मे समस्याओं का सामना कर उनका पर्याप्त रूप से निराकरण कर सके।"

(४) जोन्स : "सूचित करना, निर्देश करना, पथ-प्रदर्शन करना और इसका अर्थ सहायता देने से अधिक है।"

(५) एमरीस्ट्रूप्स : "स्वयं के तथा समाज के अधिकतम हित मे व्यक्ति की क्षमताओ का अधिकतम विकास करने में सहायता प्रदान करने की एक सतत् क्रिया को मार्गदर्शन कहते है।"

मार्गदर्शन के लक्ष्य या उद्देश्य

मार्गदर्शन एक उद्देश्यपूर्ण क्रिया है। इसका एक निश्चित लक्ष्य होता है। मार्गदर्शन के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य है :

(१) छात्र को अपनी योग्यताओं तथा क्षमताओं सम्बन्धी ज्ञान करना है मार्गदर्शन की विधियों की मदद से छात्र अपने स्वयं के बारे में अधिक-से-अधिक जानकारी प्राप्त करता है।

(२) छात्र की योग्यताओं, क्षमताओं तथा रुचि का अधिक-से-अधिक विकास करना है।

(३) जो छात्र जिसके लिए योग्य है उन अवसरों को सामने रखना मार्गदर्शन का उद्देश्य है।

(४) नये वातावरण में स्वयं को समायोजित बनाने में छात्रों को सहायता देना मार्गदर्शन का उद्देश्य है।

(५) भविष्य में अपना उत्तरदायित्व स्वयं लेने योग्य छात्र को बनाना।

(६) विषम परिस्थितियों में उत्पन्न होने वाली समस्याओं का हल करने में व्यक्ति को योग्य बनाया जाय जिससे वह अपना तथा जिस समाज में वह रहता है दोनों का अधिक-से-अधिक लाभ कर सके।

(७) व्यक्ति का बहुमुखी विकास करना मार्गदर्शन का उद्देश्य है। मार्गदर्शन व्यक्ति में विद्यमान क्षमताएँ, योग्यता आदि नैसर्गिक शक्तियों का ज्ञान कर उन्हें अधिकतम लाभदायक कार्यों में लगाता है। परिणामतः उसकी आत्मशक्ति का विकास होकर व्यक्तित्व की जानकारी प्राप्त करने में मदद मिलती है।

शिक्षा में मार्गदर्शन का कार्य

शिक्षा की परिभाषा करते समय मानव को केन्द्र बिन्दु मान लिया गया है। मानव के जैविक तथा सामाजिक दो रूप हैं। मानव के शारीरिक या जैविक रूप के विकास के लिये पौष्टिक भोजन की आवश्यकता है किन्तु सामाजिक विकास के लिये शिक्षा की आवश्यकता है। मानव में बुद्धि होती है अतः मानव अन्य प्राणी से अलग है। बुद्धि का उचित विकास करना शिक्षा का उद्देश्य है। टी॰ रेमण्ट ने कहा है, "शिक्षा मानव विकास की शैशवावस्था से प्रौढ़ावस्था तक की प्रक्रिया है जिसके द्वारा मानव स्वयं को भौतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक वातावरण के धीरे-धीरे अनुकूल बनाता है।" बीसवीं शताब्दी में, डीवी ने कहा है, "व्यक्ति में विद्यमान सभी क्षमताओं का विकास, जिससे वह वातावरण पर नियन्त्रण कर सके, शिक्षा है।"

संक्षेप में, व्यक्ति का सर्वांगीण विकास शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है।

मार्गदर्शन विशेष सेवाओं की एक शृंखला है। इसमें वे कार्य सम्मिलित हैं जो प्रत्येक बालक की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये विद्यालयों के

विभिन्न कार्यक्रमों को अधिक प्रभावशाली बनाते हैं। विद्यालयों मे निम्नलिखित कार्यक्रम होते हैं :

(१) छात्रों की वास्तविक आवश्यकताओं तथा समस्याओं को ढूढ़ना,

(२) व्यक्तिगत छात्र की समस्याओं को ढूढकर उनका निराकरण करना,

(३) छात्रों के विकास सम्बन्धी विशेषताओं की जानकारी अध्यापकों को कराना जिससे शिक्षण का समन्वय हो सके,

(४) व्यक्तिगत परामर्श, शैक्षिक संस्थाओं सम्बन्धी तथा विभिन्न व्यवसायों सम्बन्धी परिचयात्मक जानकारी, समूह का मार्गदर्शन, नौकरी दिलाने में मदद करना तथा विद्यालय छोड़ने के पश्चात् छात्रों से सम्बन्ध स्थापित करना आदि विशिष्ट सेवाओं की व्यवस्था विद्यालयों में तथा मार्गदर्शन के क्षेत्र मे आती हैं।

(५) विभिन्न कार्यक्रम कहाँ तक सफल हुए हैं इस सम्बन्ध मे मूल्यांकन करना मार्गदर्शन का ही कार्य है।

अध्यापक का कार्य इतना ही है कि वह छात्रों के आत्म-शिक्षण के लिए अनुकूल तथा मूल्यवान अवसर उपलब्ध कर दे। यदि छात्र अध्ययन करना चाहता है तो उसकी अध्ययन की इच्छा को बढ़ावा देने, उसे क्या सीखना चाहिए, इसकी जानकारी प्राप्त करने मे सहायता देने और अपने अध्ययन में सन्तोषजनक प्रगति करने के लिए उसे प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है। शैक्षिक प्रक्रिया व्यक्ति के अन्दर स्थान बनाती है और शिक्षा का व्यक्ति पर जो परिणाम होता है उसे हम उसके आचरण मे देखते हैं।

मार्गदर्शन का शिक्षा से क्या सम्बन्ध है ? मार्गदर्शन में व्यक्ति के बाहर के वे तत्त्व हैं जो उसके लिए उसकी आत्म-विकास की खोज मे उपलब्ध किये जाते हैं। मार्गदर्शन एक अत्यन्त व्यापक रूप में शिक्षा का एक रूप है और वह विद्यालयों में तथा महाविद्यालयों मे, जहाँ शिक्षा का कार्य होता है, वहाँ स्वयं उपलब्ध होता है; अतः वह शिक्षा का अभिन्न अंग है। व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिये आवश्यक जानकारी तथा मूल्यवान अवसर उपलब्ध कराना मार्गदर्शन का कार्य है।

मार्गदर्शन की दी हुई उपर्युक्त विभिन्न परिभाषाएँ इस बात पर जोर देती हैं कि "जीवन की तैयारी मार्गदर्शन का अन्तिम ध्येय है।" हमारे सामने तीन बातें आती हैं। (१) मार्गदर्शन व्यक्ति के विकास के सभी रूपों से सम्बन्धित है। परिवर्तनशील वातावरण भी व्यक्ति का तालमेल बैठाने में सम्पूर्ण बालक को ध्यान में रखता है। (२) बच्चे के व्यक्तित्व को अच्छी प्रकार समझने तथा व्यक्तिगत योग्यता, क्षमता आदि के सम्बन्ध में जानकारी करता है। (३)

मार्गदर्शन छात्रों को स्वयं मार्ग ढूंढ़ने में उनको अपने आप प्रयास करने में सहायता देता है।

इस प्रकार शिक्षा के उद्देश्य तथा मार्गदर्शन के उद्देश्य दोनों में काफी समानता है। दोनों ही बच्चे की योग्यता, क्षमता, रुचि आदि का अधिकतम विकास कर समाज के लिए एक योग्य घटक (व्यक्ति) बनाने का ध्येय अपने सामने रखते हैं। यह एक निरंतर और प्रगतिशील क्रिया है। वर्तमान मार्गदर्शन माध्यमिक शिक्षा का नया कार्य है और इसे माध्यमिक शिक्षा के महत्त्वपूर्ण अंगों के रूप में स्वीकार किया ही जाना चाहिए।

२

शैक्षणिक निर्देशन

माता-पिता की बालक सम्बन्धी दो प्रमुख समस्याएँ हैं जिनके लिये बालकों को सही मार्गदर्शन की आवश्यकता है : (१) शिक्षा सम्बन्धी, (२) व्यवसाय सम्बन्धी।

वैसे तो शैक्षणिक मार्गदर्शन किसी भी स्तर पर दिया जा सकता है लेकिन उच्च माध्यमिक कक्षाओं में पहुंचने से पहले यह बहुत आवश्यक है। शालाओं में मार्गदर्शन का उस समय आरम्भ होता है जबकि वर्तमान क्रियाओं का चुनाव उसके भविष्य के जीवन में—विद्यालय छोड़ने के बाद—प्रभावशाली हो जाता है। यह समय है कक्षा ८ या ६ जबकि छात्रों को विभिन्न पाठ्य-वर्गों में से किसी एक जिसके लिए वह अधिक योग्य है, को चुनना आवश्यक है। यह मार्गदर्शन "शैक्षिक मार्गदर्शन" कहलाता है। छात्र जो विषय चुनेगा वह आगे चलकर जीविकोपार्जन हेतु उपयुक्त होगा अथवा नहीं, यह बात महत्वपूर्ण है। दूसरे शब्दों में शैक्षणिक मार्गदर्शन पर ही आगे चलकर व्यावसायिक मार्गदर्शन आधारित होगा क्योंकि शैक्षणिक मार्गदर्शन के समय जिस प्रकार छात्र के बुद्धि, स्तर, विशिष्ट मानसिक योग्यताएँ, रुचि, अभिरुचि आदि को ध्यान में रखा जाता है, इन्हीं मनोवैज्ञानिक तथ्यों को व्यावसायिक मार्गदर्शन के समय भी ध्यान में रखा जाता है। उदाहरणार्थ किसी एक छात्र में शाब्दिक योग्यता उच्च स्तर की है तो वह साहित्यिक विषयों के लिए जैसे भाषा, सामाजिक-ज्ञान, इतिहास, भूगोल आदि के लिये अधिक उपयुक्त होगा तथा भविष्य में ऐसे कार्य में जिसमें साहित्य व भाषा की प्रधानता है जैसे पत्रकारिता, संपादन, अध्यापन आदि के लिये अधिक उपयुक्त होगा। यदि बालक भौतिकशास्त्र,

रसायनशास्त्र, गणित आदि विज्ञान वर्ग के विषय न लेकर साहित्यिक या मानव-शास्त्रीय विषय लें तो आगे चलकर उसका इंजीनियरिंग में जाना असम्भव होगा। बहुत से छात्र सोचते हैं कि वह आगे चलकर मेडिकल या इंजीनियरिंग महाविद्यालयों में अध्ययन करें किन्तु कक्षा ९ में मानवीय या वाणिज्य वर्ग लेते हैं। तात्पर्य शैक्षणिक मार्गदर्शन देते समय व्यावसायिक मार्गदर्शन भी अप्रत्यक्ष रूप से कार्यान्वित होता रहता है।

मार्गदर्शन की परिभाषा

ब्रेवर ने कहा है—"शैक्षणिक मार्गदर्शन सचेत प्रयत्न है जिसके द्वारा व्यक्ति के बौद्धिक विकास में सहायता दी जाती है।"'कोई भी चीज जो शिक्षण या सीखने से सम्बन्धित है वह शैक्षणिक मार्गदर्शन में समाविष्ट है।"

जोन्स ने शैक्षणिक मार्गदर्शन की परिभाषा इस प्रकार दी है, "विद्यालय, पाठ्यक्रम में, पाठ्य विषय तथा शाला के जीवन से सम्बन्धित चयन तथा उनमें समायोजन करने हेतु छात्रों को दी गई सहायता का ही अर्थ शैक्षणिक मार्गदर्शन है।"

रूथ स्ट्रांग—"शैक्षणिक मार्गदर्शन का उद्देश्य व्यक्तियों को उचित कार्यक्रम चुनने तथा उनमें प्रगति करने में सहायता देना है।"

मायर्स के अनुसार "शैक्षणिक मार्गदर्शन एक प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया एक ओर व्यक्तिगत छात्र में विशिष्ट गुण तथा दूसरी ओर अवसरों के विभिन्न समूह एवं मांगों के बीच व्यक्ति-विकास अथवा व्यक्ति-शिक्षण के लिए अनुकूल स्थिति निर्माण करता है।"

उपर्युक्त विभिन्न परिभाषाएँ ध्यान में रखते हुए संक्षेप में शैक्षणिक मार्गदर्शन का अर्थ निम्नलिखित है :

शैक्षणिक मार्गदर्शन इस प्रकार की सहायता है जो विद्यार्थियों को पाठ्यक्रम तथा अनेक शिक्षा सम्बन्धी क्रियाओं का चुनाव करने में तथा उनके साथ तालमेल स्थापित करने में दी जाती है।

यहाँ पर भी हमारे सामने दो प्रकार की विभिन्नताएँ रहती हैं—एक ओर व्यक्तिगत विभिन्नता तथा दूसरी ओर विभिन्न पाठ्यक्रम तथा अन्य शैक्षणिक क्रियाएँ। जब बालक शाला में प्रवेश लेता है तब वह विषयों के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता। वह धीरे-धीरे स्वयं को व्यवस्थित कर लेता है।

शैक्षणिक मार्गदर्शन में मार्गदर्शक को बालक की रुचि, योग्यता, क्षमता स्वभाव आदि सम्बन्धी ज्ञान होना चाहिए। इसके अतिरिक्त शिक्षा, पाठ्यक्रम

और विभिन्न क्रियाओं सम्बन्धी भी जानकारी होनी चाहिए। उसे यह भी पता होना चाहिए कि भिन्न-भिन्न महाविद्यालयों में भिन्न-भिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती है।

शैक्षणिक मार्गदर्शन की आवश्यकता

निम्नलिखित कारणों से शैक्षणिक मार्गदर्शन आवश्यक है :

(१) पाठ्य-विषयों का उचित चुनाव :—जब छात्रों में क्षमता, रुचि आदि में भिन्नताएँ होती हैं तब उनके द्वारा एक ही पाठ्यक्रम का अध्ययन करना अमनोवैज्ञानिक है। छात्रों को स्वयं के तथा पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में कोई ज्ञान नहीं होता। बहुधा छात्र अपने अभिभावक या संरक्षक की सलाह के अनुसार विषयों का चुनाव करते हैं। कभी-कभी वह स्वयं (जहाँ पर माता-पिता अनपढ़ होते हैं) अपनी रुचि (जो वास्तविक रूप से सत्य हो अथवा न हो) या सरलता की दृष्टि से विषय चुनते हैं। इस प्रकार के विषय-चुनाव में अपव्यय अथवा अवरोधन होने की सम्भावना होती है। कम योग्यता तथा उच्च महत्वाकांक्षा के कारण पाठ्य विषयों का गलत चुनाव होने के कारण एक ही कक्षा में बार-बार अनुत्तीर्ण होने की सम्भावना है। उच्च योग्यता होते हुए निम्न महत्वाकांक्षा भी गम्भीर समस्याएँ खड़ी करती हैं। प्रखर छात्र जब सरल विषय चुनते हैं तब उनकी प्रखरता का वास्तविक लाभ राष्ट्र तथा स्वयं छात्र को भी नहीं हो पाता। इन समस्याओं को हल करने के लिए शैक्षणिक मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

(२) आगे की शिक्षा सम्बन्धी निर्णय :—कक्षा १० या ११ पास होने के बाद कौन से विद्यालय में जाना चाहिए यह समस्या उत्पन्न होती है। औद्योगिक विद्यालय में या व्यापारिक विद्यालय में या किसी प्रशिक्षण संस्था में प्रशिक्षण प्राप्त किया जाय इसके निर्णय के लिए छात्र को शैक्षणिक मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

(३) नवीन विद्यालयों में समायोजन करना :—जब छात्र नवीन विद्यालय में प्रवेश प्राप्त करते हैं तब वहाँ के नियमों का ज्ञान उन्हें नहीं होता। यह समस्या गम्भीर तब होती है जब छात्र ग्रामीण वातावरण से आसपास के किसी शहर में जाकर शिक्षा प्राप्त करता है। ऐसी अवस्था में समायोजन करने हेतु व्यक्तिगत परामर्श, साक्षात्कार आदि की आवश्यकता है। यह कार्य शैक्षणिक मार्गदर्शन का ही है।

(४) विभिन्न व्यवसायों के अवसर सम्बन्धी जानकारी देना :—कौन-सा

पाठ्य-विषय किस व्यवसाय से सम्बन्धित है इस सम्बन्ध में जानकारी देने से तथा किस व्यवसाय में माँग अधिक तथा पूर्ति कम आदि से सम्बन्धित जानकारी देने से कुछ हद तक शिक्षित बेकारी दूर की जा सकती है। यह कार्य शैक्षणिक मार्गदर्शन का है।

शैक्षणिक मार्गदर्शन के उद्देश्य

जोन्स ने शैक्षिक मार्गदर्शन के निम्नलिखित उद्देश्य बताये हैं :—

(१) सम्भावित तथा इच्छित आगे की शिक्षा से सम्बन्धित सूचनाएँ प्राप्त करने में छात्रों को सहायता देना। देश में ५ वीं, ८ वीं तथा १० वीं या ११ वीं (जो भी अन्तिम कक्षा हो) कक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त किस विद्यालय में प्रवेश पाकर शिक्षा जारी रखनी चाहिए इस सम्बन्ध में निर्णय लेने हेतु छात्रों को मदद करना शैक्षणिक मार्गदर्शन का उद्देश्य है।

(२) विभिन्न प्रकार के विद्यालयों के उद्देश्य तथा उनके कार्यों सम्बन्धी सूचनाएँ प्राप्त करने में विद्यार्थी को सहायता देना। देश में बहुउद्देशीय विद्यालय, औद्योगिक विद्यालय, व्यावसायिक विद्यालय, प्रशिक्षण संस्थाएँ आदि स्थापित हुई हैं। इन शैक्षणिक संस्थाओं सम्बन्धी विस्तृत जानकारी प्राप्त करने में छात्रों की मदद करने की आवश्यकता है।

(३) विद्यालय क्या देता है अर्थात् कौन-से विद्यालय में कौन-सा पाठ्य-क्रम पढ़ाया जाता है इस सम्बन्ध में सूचनाएँ प्राप्त करने में सहायता देना आवश्यक है। कुछ विद्यालयों में कृषि या वाणिज्य या अन्य पाठ्य-क्रम पढ़ाने के सम्बन्ध में ही स्वीकृति होती है अतः ऐसे विद्यालयों के बारे में जानकारी देना शैक्षणिक मार्गदर्शन का उद्देश्य है।

(४) स्वयं की रुचि के विद्यालय में प्रवेश हेतु आवश्यक शर्तों सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने में छात्रों को सहायता करना। प्रत्येक विद्यालय, शैक्षिक संस्था में प्रवेश के सम्बन्ध में कुछ नियम होते हैं। आयु सीमा या शैक्षणिक प्राप्तांक, साक्षात्कार या केवल प्राप्तांक का प्रतिशत आदि शर्तों में से कोई एक या अधिक शर्तें प्रवेश के समय छात्र को पूर्ण करना अधिक आवश्यक है। अतः उनके सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी देना शैक्षणिक मार्गदर्शन का उद्देश्य है।

(५) पाठ्यक्रम, विद्यालय और उससे सम्बन्धित सामाजिक जीवन में स्वयं को समायोजित करने में छात्र की सहायता करना। ग्रामीण क्षेत्र से शहरी क्षेत्र के विद्यालयों में या एक विद्यालय से दूसरे विद्यालय में प्रवेश लेने पर

सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं अतः नवीन वातावरण में छात्रों को अनुकूल बनाना शैक्षणिक मार्गदर्शन का कार्य है। इसी के अन्तर्गत निम्नलिखित बातें हैं :

(अ) छात्र को अपनी रुचि के अनुसार विषय लेने मे सहायता देना।

(आ) विभिन्न विषयों के सम्बन्ध में जानकारी देना।

(इ) प्रत्येक विषय की उपयोगी पुस्तकों का चयन कैसे किया जाय इस सम्बन्ध में जानकारी देना।

(ई) कमजोर विषयो में अधिक प्रगति हेतु छात्रों को प्रोत्साहन देना।

(उ) छात्रों से अलग से बातचीत कर समस्याओं को जानने का प्रयत्न करना।

(ऊ) पाठ्यक्रम के अतिरिक्त अन्य क्रियाओं सम्बन्धी जानकारी देना तथा उपयुक्त क्रिया के चुनने में उन्हें सहायता देना।

(ए) खेल के मैदान मे उन्हें प्रोत्साहन देना।

(६) प्रतिस्पर्धा-परीक्षाओं सम्बन्धी सूचनाएँ प्राप्त करने में छात्रों को मार्ग-दर्शन देना। देश में केन्द्रीय स्तर पर तथा राज्य स्तर पर लोक सेवा आयोग विभिन्न सेवाओं के लिए परीक्षाएँ आयोजित करते हैं। इस सम्बन्ध मे विज्ञप्तियाँ मुख्य-मुख्य अखबारों में आती हैं किन्तु इनकी सूचना सभी छात्रों को होगी यह संभव नही है अतः इस सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी देना शैक्षणिक मार्गदर्शन का उद्देश्य है।

(७) व्यवसायों के चुनाव में छात्रों का मार्गदर्शन करना :—कई छात्र अपना अध्ययन काल समाप्त करने पर या पहले भी किसी व्यवसाय में जाना चाहते हैं। ऐसी स्थिति मे वे जिस व्यवसाय में जाना चाहते हैं उसके सबंध में आवश्यक शैक्षिक योग्यता, वेतन, प्रशिक्षण की आवश्यकता, प्रगति की संभावनाएँ, आयु सीमा आदि के सम्बन्ध मे अध्ययनकाल मे अधिक-से-अधिक जानकारी देना शैक्षिक मार्गदर्शन का उद्देश्य है।

(८) छात्र को स्वयं की रुचियों, अभिरुचियों के बारे मे जानकारी प्राप्त करने में सहायता देना शैक्षणिक मार्गदर्शन का कार्य है।

व्यावसायिक निर्देशन

परिभाषाएँ

सन् १९२४ में नेशनल वोकेशनल गाईडेंस एसोसिएशन ने एक रिपोर्ट में कहा है—"व्यावसायिक मार्गदर्शन किसी व्यवसाय के चुनने, उसके लिए तैयार होने, उसमें प्रवेश करने तथा उसमें उन्नति करने हेतु सूचना, अनुभव तथा सलाह देने की पद्धति है।"

सन् १९३७ में इसी एसोसिएशन ने कहा है—"व्यक्ति के व्यवसाय-चयन में, उसकी तैयारी में, प्रवेश में तथा उसमें उन्नति हेतु सहायता की प्रक्रिया, व्यावसायिक मार्गदर्शन है। इसका मुख्य उद्देश्य सन्तोषजनक व्यावसायिक समायोजन हेतु भविष्य की योजना एवं जीविका निर्माण करने के लिए निर्णय लेने में सहायता देना है।"

अपनी पुस्तक 'Appraising Vocational Fitness' में डी. ई. सुपर ने व्यावसायिक मार्गदर्शन की परिभाषा करते हुए कहा है—"व्यक्ति को सहायता करना जिससे वह व्यवसाय मे समायोजन कर सके तथा मानव शक्ति का प्रभावशाली उपयोग कर सके एवं समाज के आर्थिक विकास के लिए सुविधाएँ उपलब्ध कर सके।"

सन् १९४६ में अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन ने कहा है कि "व्यक्ति के विशिष्ट गुण तथा उनका व्यावसायिक अवसरों से सम्बन्ध को ध्यान में रखते हुए व्यावसायिक चयन तथा उन्नति से सम्बन्धित समस्या को हल करने में व्यक्ति की सहायता प्रदान करना व्यावसायिक मार्गदर्शन है।"

मायर्स के अनुसार "व्यावसायिक मार्गदर्शन मुख्यतः युवकों की अमूल्य

नैसर्गिक क्षमताओं तथा उन्हें विद्यालयों में दिये गये मूल्यवान प्रशिक्षण को सुरक्षित रखने का एक प्रयत्न है। यह इन सबसे अधिक मूल्यवान मानव साधनों को सुरक्षित रखकर जहाँ पर वे अधिकतर व्यक्तिगत समाधान तथा सफलता एवं समाज का अधिकतम हित हो सके, वहाँ पर उनका उपयोग करने के लिए व्यक्ति को सहायता प्रदान करना है।"

व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता

निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता अधिक स्पष्ट हो जाती है :—

(१) व्यवसायों में विभिन्नता :—एक समय ऐसा था जबकि युवक के सामने कुछ मर्यादित व्यवसाय थे तथा इनमें से ही उसे किसी एक को चुनना था। व्यवसाय-निर्णय की समस्या इतनी कठिन नहीं थी। किन्तु आज राष्ट्र के व्यवसायों के वर्गीकरण के आधार पर यह स्पष्ट किया गया है कि भारत में तीन हजार से अधिक व्यवसाय हैं। अब यह महत्वपूर्ण प्रश्न है कि अपनी योग्यता, क्षमता, रुचि आदि के आधार पर किस व्यवसाय मे छात्र को जाना चाहिए जिससे वह भावी जीवन मे समायोजन स्थापित कर सके। संक्षेप में छात्र के लिए अध्ययन काल में ही उचित व्यावसायिक विकास हो, इस ओर ध्यान देना आवश्यक है।

(२) व्यक्ति की विभिन्नताएँ :—प्रत्येक व्यक्ति में शारीरिक तथा मानसिक विभिन्नताएँ होती हैं। अतः हर व्यक्ति हर कार्य को नहीं कर सकता इसी प्रकार हर कार्य के लिये हर व्यक्ति योग्य भी नहीं हो सकता। योग्य कार्य के लिये योग्य व्यक्ति का चुनाव व्यावसायिक मार्गदर्शन का ध्येय है।

(३) आर्थिक दृष्टिकोण से व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता :—देश में वर्तमान स्थितियों में बेकारी की समस्या का भयकर रूप दिखाई दे रहा है। अनेक युवक विद्यालय या महाविद्यालय छोड़ने के उपरान्त व्यवसाय की तलाश मे कई दिनों तक बेकार रहते हैं। परिणामतः स्वयं की रुचि के अनुसार व्यवसाय न मिलने पर जो व्यवसाय मिल जाय उसमें प्रवेश करते हैं। इससे वह चुने हुए व्यवसाय में उत्साहपूर्वक कार्य नहीं कर पाते तथा स्वयं को एवं मालिक दोनो को क्षति उठानी पड़ती है। समाज के आर्थिक दृष्टिकोण से व्यावसायिक मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

(४) स्वास्थ्य की दृष्टि से व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता :—स्वयं की रुचि के अनुसार व्यवसाय मिलने पर व्यक्ति का उत्साह बना रहेगा।

परिणामतः वह मानसिक रूप से सन्तुष्ट रहेगा। उसका स्वास्थ्य ठीक रहेगा। उदाहरणार्थ—यात्रा कार्य कमजोर स्वास्थ्य वाले व्यक्तियों को उचित नहीं है (यह तथ्य सबके लिये लागू नहीं है) ऐसी अवस्था में यात्रा कार्य वाले व्यवसाय में प्रवेश मिलने पर उसका स्वास्थ्य अधिक खराब होने की सम्भावना है। अतः इस दृष्टिकोण से भी व्यावसायिक मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

(५) व्यक्तित्व ह्रास को रोकने के लिये व्यावसायिक निर्देशन :—अयोग्य व्यवसाय में प्रवेश पाने पर उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का ह्रास होने लगता है। क्योंकि उसका मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ने के कारण वह अपने को व्यवस्थित नहीं कर पाता। उसके व्यवहार में भी यह बात आती है। उसका आन्तरिक सन्तोष नष्ट होने से जीवन नीरस तथा निराशामय लगने लगता है। इसमें व्यक्तित्व का ह्रास है। अतः व्यावसायिक मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

(६) व्यावसायिक मार्गदर्शन के व्यक्तिगत तथा सामाजिक मूल्य :—सामाजिक दृष्टि से व्यक्ति का मूल्य तभी है जब वह समाज का अधिक-से-अधिक हित या कल्याण करता है तथा इसी में उसका व्यक्तिगत मूल्य भी समाविष्ट है। समाज का अधिक-से-अधिक कल्याण करने का अर्थ है व्यावसायिक जगत में किसी व्यवसाय को अपनाकर, अधिक कार्यक्षम होकर वह उत्साहपूर्वक कार्य करे। व्यावसायिक जगत में सफलता प्राप्त करने के लिए चुना हुआ व्यवसाय व्यक्ति के लिये उपयुक्त होना चाहिये। अतः व्यावसायिक मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

(७) मानव शक्तियों का उपयोग करने हेतु :—यह सत्य है कि हर व्यक्ति में जन्मजात कुछ योग्यताएँ, क्षमताएँ होती हैं। इनका पूरा विकास न होने से व्यक्ति का तथा समाज का कल्याण नहीं हो सकता। अतः इनका पता लगाना तथा उचित अवसर उपलब्ध कराना व्यावसायिक मार्गदर्शन का कार्य है।

व्यवसाय चयन करते समय ध्यान में रखने योग्य तथ्य

इसके अन्तर्गत दो प्रकार के तथ्यों की अधिक आवश्यकता है :—

(अ) स्वयं के बारे में विस्तृत जानकारी तथा

(ब) व्यवसायों के बारे में विस्तृत जानकारी।

(अ) स्वयं के बारे में विस्तृत जानकारी

जहाँ तक हो सके छात्र को अपनी योग्यता, रुचि और व्यक्तित्व सम्बन्धी अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहिये। कोई भी काम या व्यवसाय

इसलिए नहीं चुन लेना चाहिए कि उसे तुम्हारा कोई साथी या रिश्तेदार कर रहा है। 'तुम' अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा भिन्न हो। अतः अपनी योग्यताओं तथा कमजोरियों का जानना आवश्यक है।

तुम अपने अध्यापक से या शाला रिकार्ड की सहायता से अपने बारे में अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हो। शाला रिकार्ड के आधार पर तुम किन किन विषयों में हमेशा अधिक अंक प्राप्त करते हो तथा किन विषयों में कमजोर हो आदि का अंदाज लगाया जा सकता है। कक्षा-अध्यापक अपने विद्यार्थियों के बारे में कुछ न कुछ जानकारी रखते हैं। वे भी व्यवसाय चुनाव कार्य में मदद कर सकते हैं। आपकी कार्य क्षमता क्या है, सहकार्य की भावना तथा अपने अधिकारी या सहयोगी के साथ मिलकर कार्य करने की योग्यता आदि सम्बन्धी जानकारी दे सकते हैं। इसके अलावा आपमें कोई कमजोरियाँ हों तो उन्हें भी दूर करने में सहायक होते हैं।

मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं के द्वारा स्वयं के बारे में जानकारी प्राप्त करना दूसरा तरीका है। वर्तमान में हर राज्य में तथा बड़े-बड़े नगरों में मनोवैज्ञानिक केन्द्र तथा व्यावसायिक मार्गदर्शन केन्द्र मार्गदर्शन का कार्य कर रहे हैं। इन केन्द्रों में बुद्धि, स्वार्थ, अभिरुचि या व्यक्तित्व सम्बन्धी परीक्षाओं के आधार पर व्यक्ति के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त की जा सकती है। कुछ शालाओं में व्यावसायिक अध्यापक, परामर्शदाता या शाला मनोवैज्ञानिक भी इस क्षेत्र में अपना कार्य करते हैं।

मानसिक योग्यता, रुचि तथा व्यक्तित्व का मापना

कुछ अंशों में व्यक्ति की बुद्धि का पता नीचे लिखी बातों से भी लगाया जा सकता है :—

(i) शब्दों की सहायता से व्यक्त किये गये विचारों को समझने की शक्ति जिसे शाब्दिक शक्ति कहते हैं।

(ii) किसी वस्तु की दो या तीन परिधि तक उसका स्थान सम्बन्धी ज्ञान व उसकी कल्पना करना।

(iii) समस्याओं का सही हल निकालना, आगे की बात सोचना और योजना बनाना।

(iv) अंकों का प्रयोग करना तथा सवालों को सही ढंग से व शीघ्र हल करने की योग्यता रखना, जिसे गणित की योग्यता कहते हैं। इसे मानसिक दक्षता भी कहते हैं।
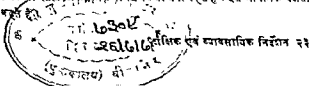
(v) कागज पर लिखे शब्दों या संख्याओं का शीघ्रता तथा शुद्धता से देखने की योग्यता।

(vi) उँगलियों तथा हाथों की सहायता से कागज, पैंसिल या अन्य सामग्री को संभालना। इसे यान्त्रिक योग्यता कहते हैं।

उपर्युक्त मानसिक योग्यताओं तथा अन्य योग्यताओं की प्रारंभिक जानकारी के लिए अलग-अलग परीक्षाएँ हैं। यदि व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुकूल काम चुन लेता है तो उसमें सफलता प्राप्त करने की अधिक सम्भावना होती है। उदाहरण के लिए यदि आप में शाब्दिक तथा चिह्नों के अर्थ समझने की योग्यता अधिक है तो आप लेखक, प्राध्यापक या वकील जिसमें इस योग्यता का अधिक उपयोग है, बन सकते हैं। इसी प्रकार वस्तु के स्थान का ज्ञान या कल्पना करने की योग्यता जिसमें है वह व्यक्ति इन्जीनियर, कलाकार या ओवरसियर के व्यवसाय में सफल बन सकता है। इसी प्रकार अन्य योग्यताओं के बारे में कहा जा सकता है।

परन्तु केवल इन्हीं बातों से यह बात मान लेना गलत होगा कि ऊपर लिखे व्यवसायों के लिये केवल किसी एक विशेष योग्यता का ही होना आवश्यक है। हाँ यह सत्य है कि अन्य योग्यताओं की तुलना में ऊपर बताये व्यवसायों के लिए उससे सम्बन्धित किसी एक विशेष योग्यता का होना अधिक आवश्यक है। इससे जिस व्यवसाय में व्यक्ति प्रवेश पायेगा, वहाँ उसे कार्यक्षमता दिखाने का पूरा-पूरा अवसर मिलेगा। वह प्रसन्न रहेगा तथा काम से संतोष प्राप्त करेगा।

योग्यता के साथ-साथ रुचि सम्बन्धी जानकारी भी प्राप्त करना आवश्यक है। रुचि की पहचान या मापन करने के भी साधन हैं। उदाहरण के तौर पर रुचि प्रश्नावली की सहायता से निम्नलिखित दस क्षेत्रों में से किस क्षेत्र में विशेष रुचि है, इस बात का पता लगाया जा सकता है।

(१) बाहर घूमने-फिरने का काम जिन व्यक्तियों को अच्छा लगता है वे अपने दफ्तर या कार्यालय के बाहर रह कर कार्य करते हैं। उदाहरणार्थ, पशुओं की देखभाल, वनों या पौधों की रक्षा करना। वनरक्षक या किसान, टूरिस्ट आदि व्यक्ति इसी श्रेणी के काम करने वाले होते हैं।

(२) जो लोग मशीनों और औजारों से काम करना पसन्द करते हैं उनमें मैकेनिक बनने की रुचि होती है। इंजिन सुधारने वाले, घड़ीसाज और इंजिनियरों का व्यवसाय इसी श्रेणी में आता है।

(३) अंकों या संख्या की जोड़, बाकी में रुचि रखने वाले बही-खाता लिखते हैं। वे अकाउण्टेण्ट और खजान्ची का काम पसन्द करते हैं।

(४) वैज्ञानिक खोज में लगे हुए व्यक्तियों की रुचि वैज्ञानिक कार्य में होती है। वे लोग डॉक्टर, केमिस्ट, भौतिक विज्ञान शास्त्री आदि बन सकते हैं।

(५) सतत् प्रयत्न करके काम को करने वाले लोगों में उनको शामिल किया जाता है जो लोगों से सम्पर्क बढ़ाते हैं एवं अपना प्रभाव डालकर काम निकाल लेते हैं। इसी प्रकार की रुचि राजनीतिज्ञ, धर्म-प्रचारक, नेता, माल बेचने वाले (सेल्समैन) आदि में अधिक होती है।

(६) कलाकार अपने हाथ से सुन्दर मूर्ति और आकृतियाँ तैयार करता है। चित्रकार, शिल्पकार, वास्तुविद्, सज्जाकार, आदि इसी श्रेणी में आते हैं।

(७) साहित्य में रुचि का अर्थ है कि कोई भी व्यक्ति लिखने-पढ़ने में रुचि रखता हो जैसे उपन्यासकार, नाटककार आदि।

(८) संगीत की रुचि उन लोगों में होती है जो संगीत सुनना पसद करते हैं, किसी साज को स्वयं बजाते हैं, गाते हैं अथवा सगीत रचना तैयार करते हैं। इस व्यवसाय के लोग संगीत और संगीतज्ञों के बारे में पढ़ते भी हैं।

(९) समाज सेवा का काम उन व्यक्तियों को अच्छा लगता है जो दूसरों की सहायता के लिए हमेशा तैयार रहते हैं, नर्स या अन्य लोग।

(१०) क्लर्की उन्हें पसंद होती है जो दफ्तरों में बैठकर शीघ्रता से संक्षिप्त और सही-सही कार्य करना चाहते हैं। इस काम को करने वालों में, बही-खाते लिखने व फाइलें रखने वाले और बिक्री क्लर्क होते हैं।

इस तरह छात्र जान सकता है उसे व्यवसाय के किस क्षेत्र में काम मिल सकता है।

स्वयं के बारे में पूरी तस्वीर तैयार करना

पूरी तस्वीर तैयार करने के लिये निम्नलिखित बातें ध्यान में रखना आवश्यक है :

(१) शारीरिक बनावट और व्यक्तित्व—इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना आसान काम है, उदाहरण के लिए आपकी ऊंचाई, सीने का नाप। जहाँ तक रक्तचाप और नजर की जाँच का सम्बन्ध है, वहाँ पर चिकित्सक की सहायता लेना आवश्यक है। कुछ व्यवसाय ऐसे हैं जहाँ पर कमजोर आँख वाले व्यक्ति प्रवेश नहीं कर पाते। ऐसे व्यवसायों के लिये प्रयास करना बेकार है।

(२) मानसिक योग्यताएँ—मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं के आधार पर छात्र में कौन-सी योग्यता है, इसका पता लगाना चाहिए :—

(अ) शब्दार्थ जानना,

(आ) वस्तुओं के स्थान सम्बन्धी बोध का ज्ञान,

(इ) कार्य कारण जानना (जिज्ञासा प्रवृत्ति),

(ई) संख्या या अंकों की योग्यता तथा

(उ) शब्दों का उचित उपयोग करने की योग्यता।

अब प्रश्न यह है कि क्या उक्त मानसिक योग्यताओं की जाँच की सुविधा हर एक छात्र को मिलती है ? उत्तर है, "नहीं"। क्योंकि इस तरह की जाँच के लिये अभी काफी साधन नहीं हैं तथा सर्वसाधारण जनता इस सम्बन्ध में जानती भी नहीं है। अतः छात्र के सम्बन्ध में शाला रिकार्ड को ध्यानपूर्वक देखने पर शिक्षक या मार्गदर्शक उसकी योग्यता के बारे में अनुमान लगा सकते हैं। वर्तमान स्थिति में "शाला रिकार्ड" आसान तरीका है। इसका उपयोग हर कोई कर सकता है। इसके लिये विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता भी नहीं। इस रिकार्ड से हमें पता लग सकता है कि छात्र कौन-कौन से विषयों में हमेशा अधिक अंक लेता है तथा कौन-कौन से विषय में वह कमजोर है।

(३) रुचि—छात्र को कौन-से विषय अधिक रुचिकर लगते हैं अथवा कौन से नहीं, इस सम्बन्ध में जानकारी रिकार्ड से प्राप्त हो सकती है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित कामों में से कौन-सा काम उसको अच्छा लगता है यह भी छात्रों से पूछा जाना आवश्यक है :

(i) बाहर आने-जाने का काम,

(ii) मैकेनिक का काम,

(iii) वैज्ञानिक का काम,

(iv) सतत् लगन से किये जाने वाला काम,

(v) कलात्मक काम,

(vi) साहित्यिक काम,

(vii) संगीत,

(viii) समाज सेवा, तथा

(ix) क्लर्की।

(४) इसके अतिरिक्त कुछ प्रवृत्तियों के विषय में भी जानकारी होना आवश्यक है। वे निम्नलिखित हैं :—

(i) भावुकता तथा सामाजिक मेल-जोल रखने का गुण—किसी भी काम

के प्रति व्यक्ति का रुख, अच्छाई तथा बुराई सम्बन्धी उसके विचार, मुसीबतें आने पर हिम्मत से सामना करने की शक्ति आदि भी व्यवसाय चयन करने मे सहायक होते हैं। जन्म से मृत्यु होने तक हर व्यक्ति समाज में ही रहता है। उसके रोज के व्यवहार मे विभिन्न व्यक्ति आते हैं। उसे उनके साथ काम करना पड़ता है अतः दूसरे व्यक्ति के साथ अपना अच्छा सम्बन्ध रखने पर किसी व्यवसाय में सफलता प्राप्त करना आसान होता है; वह अपने कार्य मे सन्तोष का अनुभव करेगा।

(ii) स्वयं का मार्गदर्शन और गुण—यहाँ पर यह जानना आवश्यक है कि व्यक्ति कोई विशिष्ट काम क्यों करना चाहता है ? आखिर उसका क्या लक्ष्य है ? यह प्रश्न व्यक्ति को स्वयं से पूछना चाहिए या मार्गदर्शक को छात्रों से पूछना चाहिए। उदाहरण के तौर पर कोई छात्र इंजीनियर या डॉक्टर बनना चाहता है। अब प्रश्न यह है कि क्यों बनना चाहता है ? क्या इसका कारण यह है कि शिक्षक ने इंजीनियर बनने की सलाह दी ? पैसे बनाने के लिए इंजीनियर बनना चाहता है अथवा अच्छे पद या प्रसिद्धि के लिए ? आपके पिता जी आपको इंजीनियर बनने के लिए कहते हैं ? इमारतें, सड़कें, जहाज आदि बनाकर देश की सेवा करना चाहते हो ? इन पर ध्यानपूर्वक सोचना, विचार करना छात्रों के लिये आवश्यक है तथा मार्गदर्शक के लिये भी।

पिछली सफलताएँ तथा असफलताएँ—निम्नलिखित क्षेत्रों मे सफलताओं तथा असफलताओं के सम्बन्ध मे हर व्यक्ति को स्वयं के बारे में सोचना आवश्यक है :

(i) आपकी रुचि का काम,
(ii) अंश कालीन (पार्टटाईम) या पूर्णकालीन (फुलटाईम) नौकरी (अगर नौकरी की है तो),
(iii) आपका घर,
(iv) आपकी जाति,
(v) सामाजिक संगठन,
(vi) विद्यालय तथा अन्य स्थानों पर खेले गये खेल आदि
(vii) आपकी रुचियाँ।

उपर्युक्त क्षेत्र व्यक्ति का निजी जीवन है। हर व्यक्ति को चाहिए कि पिछली गलतियों को न दुहरा कर भविष्य मे अधिक अच्छा कार्य करे। क्या यह कुशलता व्यक्ति ने सीखी है ?

उपर्युक्त सभी बातों पर ध्यानपूर्वक विचार करने पर हर व्यक्ति अपने

स्वयं के बारे में अधिक-से-अधिक जानकारी प्राप्त कर उचित व्यवसाय चुन सकता है या मार्गदर्शन में व्यावसायिक मार्गदर्शक से सहायता ले सकता है।

(ब) व्यवसायों के बारे में विस्तृत जानकारी

किसी भी व्यवसाय में प्रवेश करने के पूर्व हर व्यक्ति के लिये उस व्यवसाय सम्बन्धी विस्तृत जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। निम्नलिखित प्रमुख शीर्षक हैं जिनके अनुसार व्यवसाय का अध्ययन करने में सहायता मिलती है:

(१) व्यवसाय का महत्त्व :—व्यवसाय का समाज में क्या महत्व है? इसमें कितने व्यक्ति व्यवसाय प्राप्त करते हैं? क्या व्यवसाय विकसित अवस्था में है?

(२) कार्य की दशा :—कार्य किस प्रकार का है? इस कार्य में किनसे सम्पर्क पड़ेगा? क्या आपको अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में आना पड़ेगा अथवा वस्तुओं या विचारों के? हो सकता है संगठित रूप से इन सभी से सम्पर्क रखना पड़े।

(३) व्यवसाय के लिये इच्छित योग्यताएँ :—कार्य किस प्रकार की योग्यता चाहता है—शारीरिक योग्यता या मानसिक योग्यता? उस कार्य में यदि शारीरिक योग्यता की आवश्यकता है तो क्या सम्पूर्ण शरीर से वह कार्य करना पड़ेगा या शरीर के कुछ विशिष्ट अंगों से जैसे मुंह, आँख, नाक आदि। यदि मानसिक योग्यता की आवश्यकता है तो कितनी बुद्धि चाहिये, अंकों की आवश्यकता है या केवल भाषा की, इत्यादि तत्त्वों को देखना आवश्यक है।

(४) आवश्यक पढ़ाई-लिखाई या प्रशिक्षण :—इस शीर्षक के अन्तर्गत निम्नलिखित बातें आती हैं :—

(अ) व्यावसायिक, प्राविधिक अथवा सामान्य,

(आ) शिक्षा सम्बन्धी योग्यता कहाँ तक की जरूरी है अर्थात् कॉलेज की शिक्षा, हाई स्कूल अथवा मिडिल स्कूल की शिक्षा अथवा प्राविधिक शिक्षा।

(इ) यदि कोई प्रशिक्षण आवश्यक है तो प्रशिक्षण की अवधि, अथवा कितने दिनों का अनुभव आवश्यक है?

(ई) प्रशिक्षण पर क्या खर्च आयेगा?

(उ) प्रशिक्षण कहाँ पर उपलब्ध होगा?

(ऊ) काम करते हुए किस तरह का प्रशिक्षण प्राप्त हो सकता है और उस पर क्या खर्च होगा आदि?

(५) व्यवसाय में प्रवेश :—व्यवसाय में प्रवेश के समय क्या व्यक्ति के

पास कोई लायसेन्स अथवा सर्टिफिकेट होना आवश्यक है ? क्या कोई परीक्षा देनी पड़ेगी ? क्या उसे अपना नाम नियोजन कार्यालय में दर्ज करवाना आवश्यक है।

(६) कार्य परिस्थितियाँ :—व्यवसाय में प्रवेश पाने पर किन शारीरिक, सामाजिक तथा मानसिक स्थितियों में रहकर काम करना पड़ेगा यह जानना आवश्यक है। क्या कार्य चारदीवारी के अन्दर करना पड़ता है ? क्या भ्रमण पर भी जाना पड़ता है ? स्थान की सफाई कैसी है ? पर्याप्त प्रकाश, हवा, पानी की क्या व्यवस्था है ? कुल कितने घण्टे कार्य करना पड़ता है ? कार्य दिन मे करने का है या रात में इत्यादि ?—इन सबकी विस्तृत जानकारी प्राप्त करना चाहिये।

(७) काम चाहने वालों की मांग और पूर्ति :—हमेशा ऐसे व्यवसायों मे जाना चाहिये जहाँ मांग अधिक हो।

(८) व्यवसाय का इतिहास :—किसी भी संस्था, फैक्टरी या मिल में व्यवसाय लेते समय उसका इतिहास जानना अति आवश्यक है। इससे व्यवसाय स्थायी है या नहीं इस सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त होती है। आरम्भ में व्यवसाय कैसा था तथा आज व्यवसाय से सम्बन्धित अन्य विभाग कितने तथा कब खोले गये, इससे व्यवसाय विकास की अवस्था में है या इसके विपरीत है आदि सम्बन्धी जानकारी मिलती है।

(६) वेतन :—व्यवसाय में प्रारम्भिक वेतन क्या है ? अन्तिम वेतन क्या है ? प्रति वर्ष वार्षिक वृद्धि कितनी होती है ? वेतन दैनिक, साप्ताहिक या मासिक दिया जाता है ? वेतन को छोड़कर अन्य सुविधाएँ कौन सी हैं जैसे नि:शुल्क चिकित्सा, मकान, प्रति वर्ष फ्री यात्रा-पास आदि ?

(१०) उन्नति के अवसर :—कुछ समय तक काम करने के बाद उस व्यवसाय में उन्नति या तरक्की की क्या सम्भावनाएँ हैं—यह जानना आवश्यक है। हर व्यक्ति अपने जीवन में तरक्की चाहता है। कुछ व्यवसायों में हर कदम पर तरक्की के समय परीक्षाएँ भी होती हैं या लोकसेवा आयोग द्वारा विज्ञापन देकर स्थानों को भरते हैं।

(११) अन्य कर्मचारीगणों का अध्ययन :—व्यवसाय मे किस प्रकार के कर्मचारियों की संख्या अधिक है ?

(१२) सामान जिस पर कार्य करना है :—किस प्रकार के सामान पर कार्य करना पड़ता है ? कुछ सामान स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालता है। कुछ सामान अधिक जोखिमपूर्ण होता है।

(१३) नियोजन का स्थान :—कार्य स्थान पर जलवायु, भाषा, यातायात के साधनों की सुविधाएँ, खाद्य-सामग्री, स्वदेश से दूरी इत्यादि अन्य महत्वपूर्ण बातों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

(क) व्यवसायों सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने के साधन

(१) भारत सरकार के नियोजन सेवा विभाग द्वारा प्रकाशित 'अपना व्यवसाय चुनिए' पुस्तकमालाएँ विभिन्न व्यवसायों सम्बन्धी विस्तृत जानकारी देती हैं। ये पुस्तिकाएँ जिले के नियोजन कार्यालय से प्राप्त की जा सकती हैं।

(२) केन्द्रीय सरकार के नियोजन निदेशालय ने प्रत्येक राज्य में विभिन्न व्यवसायों के प्रशिक्षण की जानकारी देने वाली पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित की हैं। इन्हें प्राप्त करने के लिये नियोजन कार्यालय (एम्प्लॉयमेण्ट एक्सचेंज) से सम्पर्क स्थापित करना चाहिये।

(३) भारत सरकार के श्रम तथा नियोजन मन्त्रालय तथा अन्य मन्त्रालयों एवं राज्य से सम्बन्धित विभागों द्वारा प्रकाशित सामग्री पढ़ कर जानकारी मिल सकती है। प्रशिक्षण मन्त्रालय, स्वास्थ्य मन्त्रालय, सूचना व प्रसारण मन्त्रालय के पब्लिकेशन डिवीजन ने व्यावसायिक जानकारी हेतु उपयोगी सामग्री प्रकाशित की है। इसी प्रकार अन्य मन्त्रालयों ने भी कुछ सामग्री प्रकाशित की है। शिक्षा मन्त्रालय के प्रकाशन विभाग ने भी व्यावसायिक जानकारी देने वाली पुस्तिकाएँ प्रकाशित की हैं।

(४) केन्द्र तथा राज्य के शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन केन्द्र ने व्यावसायिक तथा प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों सम्बन्धी पुस्तिकाएँ प्रकाशित की हैं।

(५) वाय. एम. सी. ए. तथा रोटरी क्लब ने अच्छी सामग्री प्रकाशित की है।

(६) व्यावसायिक जानकारी रखने वाले विद्यालय के अध्यापक भी सहायता प्रदान कर सकते हैं।

(७) कुछ एजेन्सीज ने शिक्षा सम्बन्धी फिल्में तथा डॉक्युमेण्टरी फिल्में तैयार की हैं।

(८) ट्रेनिंग स्कूल्स और इसी तरह अन्य संस्थाओं की विवरण पत्रिकाएँ पढ़ने से बड़ी मदद मिलती है।

(९) व्यवसाय से सम्बन्धित व्यक्ति की मुलाकात भी उपयुक्त होती है। इससे आप किसी कार्य विशेष के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

(१०) व्यावसायिक तथा व्यापारिक संस्थाओं तथा सरकारी-पत्रिकाओं में जो लेख निकलते हैं वह भी उपयुक्त होते हैं।

(११) देहातों तथा कारखानो मे काम करने वालो के लिए जो रेडियो कार्यक्रम होते हैं वह भी लाभदायक हैं।

(१२) व्यापारियों तथा व्यावसायिक संस्थाओं के अधिकारियों से मिल-जुलकर भी व्यवसाय सम्बन्धी बहुत सी बातो का पता लगाया जा सकता है।

(१३) पचवर्षीय योजना सम्बन्धी प्रकाशित जानकारी से पता चल सकता है कि किन व्यवसायों में व्यक्तियों की कमी या बहुतायत है ?

(१४) दफ्तरों या कारखानो मे स्वय जाकर भी व्यवसाय सम्बन्धी प्राथमिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

(१५) यदि सुविधाएँ उपलब्ध हों तो अच्छा है किसी विशेष काम की जानकारी स्वयं उस कार्य को करके प्राप्त की जाय।

४

निर्देशन की कला

निर्देशन (मार्गदर्शन) की कला में दो विधियां शामिल हैं :—

(क) मार्गदर्शन जो सामूहिक रूप से उपयोग में आए तथा

(ख) मार्गदर्शन जो व्यक्तिगत रूप में हो।

(क) सामूहिक निर्देशन

जो व्यक्तियों के समूह में दिया जाता है उसे सामूहिक मार्गदर्शन कहते हैं। कक्षा का मार्गदर्शन सामूहिक मार्गदर्शन कहलाता है। निम्न लिखित विधियाँ सामूहिक मार्गदर्शन के अन्तर्गत आती हैं।

(१) स्कूल सभा :—स्कूल सभा एक प्रकार का संगठन है। हर सप्ताह में बैठक की व्यवस्था कर कक्षा या कमरे में अधिक से अधिक विद्यार्थियों को एक साथ एकत्रित करके किसी भी विषय पर जैसे व्यायाम के उद्देश्य, पुस्तक में दिये हुये अध्याय पर नोट्स कैसे तैयार किये जायें, पुस्तकालय में किता कैसे ढूंढनी चाहिये आदि की जानकारी दी जा सकती है। यह सभाएँ नियमि होनी चाहिएँ। विद्यार्थियों को अनिवार्य रूप से उपस्थित होना चाहिये। छा के हित को ध्यान में रखते हुए कार्यक्रम बनाना चाहिए। प्रधानाध्यापक अन्य प्रशासकों को यह नहीं समझना चाहिए कि स्कूल सभा की अवधि छा को अपने उत्तरदायित्वों का स्मरण कराने, कुछ के दुर्व्यवहार के लिये सब डांटने या अच्छे व्यवहार का पाठ पढ़ाने के लिए जोर-जोर से भाषण देने लिये है। किन्तु यह हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि सभा का कार्यक्र कितना ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हो, कुछ रुचि न रखने वाले छात्र अपने पड़ोसिय से बातचीत या अन्य अशान्तिमय कार्य करेंगे। अतः इस ओर अधिक ध्यान देने

की आवश्यकता है। विद्यालय में छात्र संसद द्वारा आयोजित कार्यक्रमों के अधिक सफल होने की संभावना है जिनमें नाटक, संगीत, नृत्य कला प्रदर्शनी, छात्रों को पुरस्कार देना, वादविवाद, खेलकूद आदि जो छात्रों से सम्बन्धित हैं, सम्मिलित हैं।

(२) गृहकक्षा कार्यक्रम की योजना :—प्रत्येक विद्यालय मे पूर्व-पाठ का कक्षा का कालांश (जो सामान्यतः १५ से ३० मिनट का हो) कक्षा के नियमित कार्यों के अलावा अन्य कार्यों मे लगना चाहिए। गृह कक्षा के कालाश मे ऐसी घरेलू स्थिति का वातावरण होता है जिसमें प्रत्येक छात्र अपनी स्कूल की और अनेक निजी समस्याओं को शिक्षक की सहायता से सुलझाता है। छात्र अपने विद्यालय के गरीब विद्यार्थियों के लिए धन संग्रह, सफाई, सुरक्षा आन्दोलन के आयोजन तथा अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों में आनन्दपूर्वक भाग लेते हैं। कभी-कभी यह गृहकक्षा का कालांश अध्यापक और विद्यार्थी के दिन भर के अध्यापन तथा अध्ययन के लिए तैयारी में भी खर्च किया जा सकता है। यह 'गपशप' का कालांश भी हो सकता है जिसमें लड़के आपस में एक-दूसरे से व्यक्तिगत मामलों में गपशप कर सकते हैं और अध्यापक कक्षा का कार्य, उपस्थिति लिखना, रिजल्ट शीट तैयार करना आदि महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं। कभी-कभी छात्रों को यह भी अनुमति देनी चाहिये कि वे परामर्शदाता या अध्यापकों से परामर्श करने के लिए कक्षा से बाहर चले जायें, पुस्तकालय मे चले जायें या अन्य कक्षाओं के छात्रों के साथ सामूहिक योजना मे भाग लें। गृहकक्षा के लिये आयोजित मार्गदर्शन के कार्यक्रम मे छात्रो की व्यक्तिगत रुचियो पर ध्यान देना चाहिए।

निर्देशन पाठ्य विधियाँ :—आजकल यह भावना बढ़ रही है कि जब मार्गदर्शन शिक्षा का अभिन्न अंग है तब प्रति सप्ताह कम से कम पाठ का एक कालांश मार्गदर्शन के उद्देश्यों के लिए अलग से निश्चित कर देना चाहिए। जब विद्यार्थी एक कक्षा से दूसरी कक्षा में प्रगति करता है तब उसे अपने वर्तमान और भावी जीवन के विविध क्षेत्रों के साथ तालमेल बैठाने की कला सीखने की आवश्यकता होती है। तालमेल के किसी न किसी क्षेत्र से घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाले तत्त्व सम्भवतः सामूहिक स्थिति या मार्गदर्शन के कक्ष मे अधिक सफलतापूर्वक सम्भाले जा सकते हैं। ऐसी पाठ्य विधियों मे अधिकांश रूप से सम्मिलित किये जाने वाले क्षेत्र शैक्षिक और व्यावसायिक अवसरों तथा मानसिक स्वास्थ्य शिक्षा आदि पर अधिक बल देते हैं।

रुचि और सेवा क्लब :—बच्चे हमेशा अपने ही जैसे विचार वाले सहपाठियों की गतिविधियों में भाग लेना चाहते हैं ताकि वे अपनी रुचियों को अच्छी प्रकार सामने रख सकें अतः विद्यालयों में विभिन्न रुचि के क्लब होने चाहियें ताकि छात्र अपनी शक्ति और विशेष रुझानों को दिशा सकें। जैसे शारीरिक श्रम की टीमों, विषय सम्बन्धी क्लब जैसे विज्ञान क्लब, पत्रकार, पुस्तकालय या अन्य सेवा समूह। प्रत्येक क्लब का संचालन उस क्लब के सदस्यों में से कुशल सदस्य व्यक्ति द्वारा ही किया जाना चाहिए।

किसी भी विद्यालय में क्लबों की संख्या तथा उनका प्रकार विद्यालय का स्तर तथा छात्रों की रुचि पर निर्भर करता है। अपने देश में कुछ कुटुम्बों में छात्रों को घरेलू कार्यों के कारण समाज के क्लबों में भाग लेना कठिन है। ऐसी स्थिति में स्कूल के पश्चात् होने वाली गतिविधियों में भाग लेना अनिवार्य है।

स्कूल के प्रशासन और प्रबन्ध में विद्यार्थियों का भाग :—छात्रों और अध्यापकों द्वारा विद्यालय प्रशासन तथा प्रबन्ध का कार्यक्रम संगठित करने और चलाने से लोकशाही जीवन के लिए निर्देशन का अच्छा अवसर प्राप्त हो सकता है और निर्णय करने की क्षमता छात्रों में आने लगती है यद्यपि पूर्ण नियन्त्रण छात्रों के हाथों में नहीं होना चाहिए क्योंकि छात्र स्कूल की स्थितियों को सुधारने के प्रयत्न में ऐसी सुविधाएँ प्राप्त करना चाहें जो स्कूल के नियमों के प्रतिकूल हों अथवा जिनको पूरा करना असम्भव हो। विद्यालय में जो कुछ भी गतिविधियाँ होती हैं उनकी पूरी जिम्मेदारी शाला के प्रधानाध्यापक पर होती है।

(३) जीविका निर्देशन सम्बन्धी बैठकें :—यह अधिक उपयोगी तथा प्रभावशाली होती है। इनमें अध्यापक या परामर्शदाता विभिन्न व्यवसायों में नौकर व्यक्तियों से मिलकर वाद-विवाद या व्याख्यान का आयोजन करते हैं। इस प्रकार छात्रों को व्यवसाय सम्बन्धी विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के उचित अवसर मिलते हैं। परिणामतः उस व्यवसाय में वे कहाँ तक प्रवेश पा सकते हैं इसका भी अन्दाज छात्र कर सकते हैं।

(४) चलचित्र : टेलीविजन पोस्टर आदि :—जीवन की घटनाओं का चित्रण करने वाले चलचित्र छात्रों तथा अभिभावकों के लिए सामूहिक स्थितियों में मार्गदर्शन का कार्य करते हैं। इनका उपयोग करते समय समूह के सदस्यों को प्रदर्शन के लिए और उसके पश्चात् होने वाले वाद विवाद के लिए तैयार कर लेना आवश्यक है।

जिन छात्रों के समूह के लिए चलचित्र का आयोजन किया जाता है उनके नेता को चाहिए कि (१) फिल्म का चुनाव करके उसका पूर्ण परिचय दे, (२) फिल्म निर्बाध रूप से चलती रहे जिससे फिल्म के बाद होने वाले वाद-विवाद में बाधा न पड़े, (३) फिल्म का उद्देश्य तथा फिल्म में क्या देखना चाहिए इस सम्बन्ध में समूह को सावधान करना आवश्यक है। (४) फिल्म के बाद फिल्म सम्बन्धी प्रश्न पूछना नेता का काम है। (५) फिर मुक्त वाद-विवाद के लिए छात्रों को प्रोत्साहन देना चाहिए।

(५) सामूहिक मिलन विभिन्न शिक्षण संस्थाओं तथा फैक्टरी आदि औद्योगिक संस्थाओं में आयोजित किया जाता है। इनके द्वारा कारखाने में मजदूर या अन्य व्यक्ति किस प्रकार तथा किन परिस्थितियों में कार्य करते हैं इसे ध्यानपूर्वक देखकर जानकारी प्राप्त करते हैं।

(६) प्रश्नावली आदि भी सामूहिक रूप से दी जा सकती है :—इसके द्वारा विद्यार्थियों के सम्बन्ध में सूचना मिलती है।

(ख) व्यक्तिगत निर्देशन

वास्तव में व्यक्तिगत निर्देशन वह सहायता है जो किसी व्यक्ति को जीवन के किसी भी क्षेत्र में या विकास में श्रेष्ठ तालमेल बैठाने के लिए दी जाती है। साक्षात्कार मार्गदर्शन की कार्यविधि का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। परामर्श की सम्पूर्ण प्रक्रिया में उसे हृदय माना जाता है। विद्यालय में छात्रों के सामने अनेक समस्याएँ आती हैं। इन्हें समझने तथा इनका समाधान करने में छात्रों की सहायता करने के लिए साक्षात्कार एक महत्वपूर्ण व्यक्तिगत विधि है। साक्षात्कार में निम्नलिखित तत्त्व शामिल हैं :—

(अ) व्यक्ति का व्यक्ति से सम्बन्ध

(ब) एक दूसरे से सम्पर्क स्थापित करने का साधन

(स) साक्षात्कार में संलग्न दो व्यक्तियों में से एक को साक्षात्कार के उद्देश्य का ज्ञान रहता है।

साक्षात्कार का उपयोग निम्नलिखित में से किसी एक या अधिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है :—

(क) जानकारी प्राप्त करने के लिए

(ख) जानकारी देने के लिए

(ग) नया नौकर चुनने के लिए

(घ) तालमेल की समस्या को सुलझाने में सहायता देने के लिए।

(क) जानकारी प्राप्त करना :—किसी व्यक्ति या छात्र से सम्बन्धित अभिलेख (Record) या पुस्तिका में दिये गये तथ्यों की पूर्ति अध्यापक या मार्गदर्शक साक्षात्कार के द्वारा कर सकता है। विद्यालय के बाहर किन बातों या कार्यों में छात्र रुचि रखता है, घर में क्या कार्य करता है, अध्ययन की आदतें आदि उपयोगी तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने के लिए साक्षात्कार का सहारा लिया जाता है। साक्षात्कार कितनी देर तक चलना चाहिए यह इस बात पर निर्भर करता है कि कितनी जानकारी प्राप्त करनी है तथा जिस छात्र से साक्षात्कार किया जा रहा है उसकी आयु पर भी निर्भर करता है। बहुत से मामलों मे साक्षात्कार के लिए २०-२५ मिनट की अवधि पर्याप्त होती है।

सूचना देने के लिए :—सूचना देने की जिम्मेदारी स्कूल के सभी कर्मचारियों की है। किसी भी आयु का विद्यार्थी जो कोई सूचना चाहता है, अध्यापक या मार्गदर्शक (करीअर मास्टर या शाला परामर्शक जो भी हो) से प्राप्त करता है। अतः स्कूल के प्रबन्धकों या प्रधानाध्यापकों का कर्तव्य है कि वे विद्यार्थियों को यह जानने के लिए प्रशिक्षित करें कि उन्हें सूचनाएं कहां से मिल सकती हैं। छात्रों को ऐसा अनुभव करना चाहिए कि वे उन लोगों से स्वतन्त्रता पूर्वक सूचना प्राप्त कर सकते हैं जो इस विषय में विस्तृत जानकारी रखते हैं। ये व्यक्ति स्कूल के अध्यापक, परामर्शदाता आदि कर्मचारी होते हैं।

छात्रों को उनसे माँगी गई जानकारी देते समय अध्यापक या परामर्शदाता को तथ्यों के बारे में पूर्णतः निश्चित होना चाहिए तथा सरल भाषा में प्रस्तुत करना चाहिए ताकि विद्यार्थी उसे समझ सकें। यदि परामर्शदाता उत्तर न जानता हो तो या तो वह उपलब्ध संदर्भ सामग्री देखने में विद्यार्थी की सहायता कर सकता है अथवा वह अन्य साधनों से जानकारी प्राप्त करके साक्षात्कार की दूसरी बैठक बुला सकता है। दूसरी बैठक कब बुलाई जाय यह छात्रों द्वारा माँगी गई जानकारी के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकती है।

नये कर्मचारी का चुनाव

जब कोई व्यक्ति नौकरी के लिये साक्षात्कार के लिए उपस्थित होता है तो स्थिति के दो रूप सामने आते हैं : (१) मालिक वर्तमान रिक्त स्थान के लिए सर्वश्रेष्ठ या योग्य व्यक्ति प्राप्त करना चाहता है, (२) आवेदनकर्ता (Applicant) उस पद को प्राप्त करना चाहता है जिसके लिये वह योग्य है। मालिक व नौकर की सफलता में नौकरी का साक्षात्कार एक महत्वपूर्ण तत्त्व है।

साधारणतया साक्षात्कार के पूर्व आवेदनकर्त्ता उस पद के लिए अपनी

शैक्षणिक योग्यता तथा अनुभव, प्रशिक्षण, व्यक्तित्व सम्बन्धी योग्यता आदि लिखकर आवेदन-पत्र में प्रस्तुत करता है। भावी मालिक के पास सिफारिशी पत्र भी पहुंच सकते हैं। इसके अतिरिक्त साक्षात्कार से पूर्व अथवा साक्षात्कार के समय कभी-कभी परीक्षा भी ली जाती है। व्यक्तित्व सम्बन्धी जिन विशेषताओं का ज्ञान अन्य प्रकार से प्राप्त नहीं किया जा सकता, वह प्रत्यक्ष वार्तालाप और साक्षात्कार से स्पष्ट हो जाती हैं।

तालमेल की समस्या को सुलझाने के लिये साक्षात्कार— इस प्रकार का साक्षात्कार मार्गदर्शन अथवा परामर्श कार्य का अत्यन्त कठिन रूप है। व्यक्तिगत समस्याओं (भावात्मक असन्तुलन के कारण उत्पन्न) को सुलझाने हेतु किये गये साक्षात्कार के पूर्व निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार करना परामर्शदाता के लिये आवश्यक है :—

(i) मैं समस्या को किस सीमा तक समझता हू ?
(ii) समस्या के प्रति तथा समस्यात्मक व्यक्ति के प्रति मेरा क्या रवैया है ?
(iii) मैं व्यक्ति तथा समस्या की पृष्ठभूमि के विषय में क्या जानता हूं ?
(iv) इस समस्या का समाधान करने के लिए मुझ में कितनी योग्यता है ?
(v) मुझे साक्षात्कार की कौन-सी पद्धति अपनानी चाहिए ?
(vi) सम्भावित परिणाम क्या होंगे ?

साक्षात्कार के भाग

साक्षात्कार के मुख्य ३ भाग हैं :—
(१) प्रारम्भ,
(२) मध्य भाग,
(३) अन्त।

१) साक्षात्कार का आरम्भ

साक्षात्कार का आरम्भ करने के लिए निम्नलिखित सुझावों के अनुसार कार्य करना चाहिए :—

(अ) आत्मीयता स्थापित करना—साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति के साथ आत्मीयता स्थापित करनी चाहिए। इस सन्दर्भ में डेविस तथा रॉबिन्सन ने कुछ सुझाव दिये हैं। वे इस प्रकार हैं :—

(१) सहानुभूति—जो व्यक्ति साक्षात्कार लेता है उसे कुछ शब्दों में साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति के साथ सहानुभूति प्रकट करनी चाहिए।

(२) विश्वास—साक्षात्कारकर्त्ता को साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति में विश्वास निर्माण करना चाहिए तथा उसे प्रोत्साहित करने के लिये साहसपूर्ण वाक्यों का उपयोग करना चाहिए जैसे—"तुम्हें चिन्ता करने की आवश्यकता नही है" अतः "मुझ पर विश्वास करो" आदि।

(३) स्वीकृति—साक्षात्कारकर्त्ता व्यक्ति के साथ या परामर्शपात्र के साथ सहमति प्रकट करता है यह सहमति उसे उत्साहित करने के लिए दी जाती है जिससे कि वह स्वयं भावनाओं को बिना हिचकिचाहट प्रकट कर सके।

(४) हास्य या विनोद—साक्षात्कार की प्रक्रिया मे कभी-कभी तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है। ऐसी स्थिति में हास्य का भी उपयोग करना चाहिए। मैत्रीपूर्ण मुस्कान तनाव दूर करने मे मदद करती है।

(५) व्यक्तिगत सन्दर्भ—कभी-कभी अपनी बातों को स्पष्ट करने के लिए साक्षात्कारकर्त्ता को अपने जीवन के अनुभवों के उदाहरण देने चाहिएँ।

(६) प्रश्न पूछना—अपनी समस्याओं के सम्बन्ध में अधिक विचार करने के लिये प्रेरणा की आवश्यकता होती है और प्रेरणा के लिए प्रश्न पूछना आवश्यक है।

(७) भय—साक्षात्कार देने वाला व्यक्ति चाही गई सूचना नही देता है तब कभी-कभी भय दिखाना चाहिए।

(८) आश्चर्य—साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति के कथन पर आश्चर्य भी प्रकट करना चाहिए ताकि व्यक्ति अपने कथन मे सुधार कर सके।

(व) प्रारम्भ मे व्यवस्थित रचना पर कम ध्यान देना—प्रारंभिक अवस्था में साक्षात्कार स्वच्छन्द होना चाहिए।

(स) अनुमोदन—इसका अर्थ यह है कि साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति को स्वतन्त्रता प्रदान करना। व्यक्ति जो भी कथन करता है उस पर किसी भी प्रकार का निर्णय नही देना चाहिए। केवल "सुनने" का ही कार्य परामर्शक या अध्यापक को करना चाहिए।

(द) बातचीत का समान समय—साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्त्ता तथा साक्षात्कार देने वाला व्यक्ति दोनो को समान समय मिलना चाहिए।

(२) साक्षात्कार का मध्य भाग

इसके द्वारा इच्छित सूचनाएँ एकत्रित की जाती है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझावों की ओर ध्यान देना आवश्यक है :—

(१) प्रेरक प्रश्नों का उपयोग :—बहुत से प्रश्न 'हाँ' या 'नहीं' उत्तर वाले

होते हैं। इस प्रकार के प्रश्न साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति को अधिक बोलने की स्वतन्त्रता नही देते। अतः ऐसे प्रश्नों का उपयोग नही करना चाहिए। प्रश्न ऐसे हों जो प्रेरणा दें।

(२) निस्तब्धता का उपयोग :—साक्षात्कार के समय व्यक्ति कभी-कभी चुप हो जाता है इसका अर्थ उसके मस्तिष्क में विचार-द्वंद्व चल रहा है।

(३) सीमित सूचनाएँ :—साक्षात्कारकर्त्ता को केवल एक बैठक में छात्र के सम्बन्ध में सब कुछ जानने का प्रयत्न नही करना चाहिए। सीमिति सूचनाएँ एकबार मे जानने का प्रयत्न करना चाहिए।

(४) साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति की भावना तथा अभिवृत्ति समझने का प्रयत्न :—कभी-कभी व्यक्ति नकारात्मक भावनाओं को प्रकट करता है। ऐसी स्थिति मे परामर्शदाता को चाहिए कि वह इन भावनाओ को समझे, उन्हें स्वीकार करे।

(५) साक्षात्कार पर नियन्त्रण :—साक्षात्कार के समय स्वतन्त्रता होते हुए भी वार्तालाप के मध्य मे प्रत्यक्ष प्रश्न पूछकर जिस उद्देश्य से साक्षात्कार दिया जा रहा है, उसकी पूर्ति के लिये साक्षात्कार देने वाले को निश्चित विषय पर लाया जाता है जिससे असम्बन्धित तथ्यों को रोका जा सके।

(३) साक्षात्कार की समाप्ति

साक्षात्कार को किस प्रकार समाप्त किया जाय यह एक कठिन कार्य है। साक्षात्कार की समाप्ति दो प्रकार से की जा सकती है :—

(i) समाप्ति इस प्रकार की जाय कि छात्र को सन्तोष हो।

(ii) दूसरे साक्षात्कार को करने मे कम समय लगे।

साक्षात्कार समाप्त होने पर व्यक्ति को ऐसा अनुभव होना चाहिए कि परामर्शदाता से उसे सहायता प्राप्त हुई और भविष्य में भी वह सलाह लेने के लिए आ सकता है। अगर उसी व्यक्ति को पुनः साक्षात्कार लेना है तो पहला साक्षात्कार इस प्रकार समाप्त किया जा सकता है—"अच्छा अब आज के साक्षात्कार का समय समाप्त हुआ है। परन्तु यदि तुम चाहो तो एक सप्ताह बाद फिर मिल सकते हो—तो कौन से दिन तथा किस समय मिल सकोगे ?"

साक्षात्कारकर्त्ता को चाहिए कि वह स्वयं को दूसरे व्यक्ति की स्थिति में रखने का प्रयत्न करे और बिना किसी पक्षपात या पूर्वाग्रह के दूसरे की बात सुने। यदि परामर्शप्राप्त व्यक्ति ने प्रश्न पूछा है तो उसका उत्तर सरल भाषा में मित्रता-पूर्ण रीति से देना चाहिए जिसका उद्देश्य व्यक्ति का विश्वास जीतना होता है।

अब प्रश्न यह कि साक्षात्कारकर्त्ता को साक्षात्कार के समय आवश्यक बातें लिखते जाना चाहिए। साक्षात्कार का मूल्यांकन करने या आगामी साक्षात्कार की तैयारी के लिए तात्कालिक नोट्स लेना, साक्षात्कार समाप्त होने पर उन्हें स्मरण करने के प्रयत्न से अच्छा है। किन्तु भावनात्मक रूप से असन्तुलित व्यक्ति के सम्बन्ध में बातें लिखने से हो सकता है वह व्यक्ति अधिक चिढ़े या गुस्सा करे। परामर्शदाता या साक्षात्कारकर्त्ता को हमेशा चाहिए कि वह जो कुछ लिखता है उसे व्यक्ति को दिखा दे तथा लिखने का उद्देश्य भी उसे समझा दे। सामान्यतः ऐसी स्थिति में व्यक्ति द्वारा सहयोग मिलता है।

साक्षात्कार देने वाला व्यक्ति अपने विषय में चाहे कुछ भी कहे, साक्षात्कार-कर्त्ता को चाहिए वह सब बातें गोपनीय रखे। जो साक्षात्कार पाठ्यक्रम के चुनाव, व्यावसायिक रुचि आदि स्कूल के दैनिक मामलों से सम्बन्धित हैं, उनमें किसी भी प्रकार की गोपनीय बातें नहीं होतीं। किन्तु व्यक्तिगत समस्याएँ जिनका सम्बन्ध तालमेल या भावनाओं आदि से है, ऐसी स्थिति में गोपनीयता अवश्य होनी चाहिए। व्यक्ति का परामर्शदाता पर विश्वास होना चाहिए कि व्यक्त की गई कोई भी गोपनीय बात परामर्शदाता तक ही सीमित है। तभी वह अपने निजी जीवन की बातें बता सकता है :—

सूचनाएँ प्राप्त करने की अप्रमाणीकृत विधियाँ

छात्रों को उचित मार्गदर्शन देने के लिए छात्रों से सम्बन्धित समस्त जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। सामान्य विद्यालयों में जहाँ पर मार्गदर्शन के क्षेत्र मे प्रशिक्षित व्यक्ति न हों वहाँ मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं का उपयोग करना उचित नहीं है। ऐसी अवस्था में अप्रमाणीकृत विधियों द्वारा जानकारी एकत्रित करना अधिक उपयोगी है। यह कार्य सर्वसाधारण अध्यापक भी कर सकता है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित विधियाँ मुख्य हैं :

(१) आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख

किसी विद्यार्थी के जीवन में महत्वपूर्ण घटना का प्रतिवेदन ही आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख है। यह निरीक्षण विधि का एक रूप है। अध्यापक छात्रों को प्रतिदिन देखते हैं अतः उसके दृष्टिकोण से छात्र का जो व्यवहार महत्वपूर्ण लगे उसे लिख ले। आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख लिखते समय निम्नलिखित तथ्यों की ओर ध्यान देना आवश्यक है :—

(१) शिक्षकों का सहयोग प्राप्त करना :—परामर्शदाता की दृष्टि से यह ... महत्वपूर्ण है किन्तु कभी-कभी शाला के अन्य शिक्षक इस कार्य के

महत्त्व को न समझने के कारण इसे अतिरिक्त कार्य समझते हैं। इस प्रकार के निरीक्षण के अभिलेख की सफलता अध्यापकों के सहयोग पर निर्भर करती है क्योंकि छात्रों के व्यवहार का विभिन्न स्थिति में निरीक्षण करने का अवसर अध्यापकों को मिलता है। अध्यापकों को छात्र के हित में रुचि होनी चाहिये। परामर्शदाता को इसके महत्त्व सम्बन्धी संक्षिप्त वार्ता अध्यापकों को देनी चाहिए।

(२) निरीक्षण कितना लिखें :—इसके लिए आवश्यक है छात्र के व्यवहार के कुछ अंग चुन लिए जायें तथा शिक्षकों को इस सम्बन्ध में विशेष प्रकार की घटनाओं का विवरण लिखने को कहा जाय।

(३) फॉर्म तैयार किया जाय :—निरीक्षण लिखने के लिये एक फॉर्म शिक्षकों को देना आवश्यक है। साधारणतया अपनाये जाने वाले फॉर्म का एक नमूना निम्नलिखित है :—

छात्र का पूरा नाम························कक्षा·········

दिनांक	स्थान	महत्त्वपूर्ण घटना या व्यवहार का संक्षेप में वर्णन	टिप्पणी

(४) एक ही स्थिति में छात्र का कई बार निरीक्षण :—व्यवहार का वर्णन वस्तुनिष्ठ तथा यथार्थ होने के लिए एक ही स्थिति में उस छात्र का कई बार निरीक्षण करना आवश्यक है। अतएव अध्यापकों ने जैसा निरीक्षण किया वैसा ही लिखना चाहिए, पूर्वाग्रह युक्त होकर नहीं लिखना चाहिए।

(५) मुख्य अभिलेख प्राप्त करना :—इसके लिए शिक्षक को कुछ चिह्न या नाम लिख लेना चाहिए, जिससे कि वह घटना अध्यापन कार्य के पश्चात् लिखी जा सके।

(६) प्रमुख फाईल :—सभी छात्रों के सम्बन्ध में अभिलेख एक स्थान पर रखने के लिए परामर्शदाता का कार्यालय अधिक उपयुक्त है।

(७) संक्षिप्तीकरण :—कम-से-कम महीने में एक बार अभिलेखों का संक्षिप्तीकरण किया जाय। वार्षिक संक्षिप्तीकरण परामर्शदाता को करना चाहिए।

(२) अवलोकन

अवलोकन अन्य व्यक्तिगत विधियों के समान महत्त्वपूर्ण है। परामर्शक तथा अन्य अध्यापक अपने छात्रों के बारे में जब-कभी अवलोकन करते रहते हैं और उनके व्यवहार के सम्बन्ध मे सुनते रहते हैं तब अवलोकन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दोनों ही हो सकता है। प्रत्यक्ष अवलोकन फोटोग्राफ जैसा होता है, वह तथ्यों को स्पष्ट रूप से सामने रखता है। अप्रत्यक्ष अवलोकन में तथ्यो के निहित अर्थ को ढूंढ़ने का प्रयत्न किया जाता है।

अवलोकन का अभिलेख :—अवलोकन के अभिलेख के चार प्रकार हैं। वे निम्नलिखित हैं :—

(अ) अध्यापक या अध्यापक-परामर्शक अपने अवलोकन को वस्तुपरक ढंग से लिखता है। वह किसी प्रकार की व्याख्या नहीं करता।

(आ) इसमें व्याख्या की जाती है और दिनाक के अनुसार कारणों सहित विस्तृत सूचना एकत्रित की जाती है।

(इ) इसमें वर्णन व व्याख्या के साथ-साथ अभिमत भी लिखा जाता है।

(ई) सारी बातें मिली-जुली होती हैं जिससे अवलोकन अभिमत के साथ विशेष महत्त्व की बातों का विस्तृत विवरण भी होता है।

अवलोकित व्यक्ति :—व्यक्ति का कई विभिन्न परिस्थितियों में अवलोकन किया जाता है तथा व्यक्ति को समझने में बहुत सहायक व्यवहार पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है :—

(१) समूहों के साथ व्यक्ति का सम्बन्ध :—क्या दूसरे लोग उसे स्वीकार करते हैं या अस्वीकार करते हैं? उसका अपने परिवार तथा घर के प्रति कैसा रवैया (Attitude) है? व्यक्ति अपना जो पहला प्रभाव (First Impression) डालता है वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। मित्रतापूर्ण चेहरे का भाव, और अच्छी प्रकृति का वांछनीय उत्तर मिलता है। मानसिक रोग सम्बन्धी परीक्षा में आदत व चेहरे के भाव पर सावधानी से ध्यान दिया जाता है। व्यक्तिगत रूपसज्जा में लापरवाही, आसन और तकिया कलाम का निदाना-

त्मक महत्त्व होता है जो व्यक्ति के सामाजिक सामंजस्य को प्रभावित करते हैं।

(२) काम करने की आदत :—वह किस प्रकार के मार्गदर्शन के प्रति संवेगात्मक है ? किस प्रकार की सीखने की योग्यता उसमें है ?

(३) सामाजिक गतिविधियां :—छात्र शाला के बाहर किन बातों या कार्यों में रुचि रखता है ? क्या वह रुचिपूर्ण कार्य करता है ? वह कहाँ जाता है ? क्या करता है ? वह किन के साथ रहना चाहता है ?

(४) उसकी स्वास्थ्य सम्बन्धी आदतें और दैनिक चर्या :—क्या छात्र में कोई बीमारी है ? अपौष्टिक भोजन या अन्य कोई चिह्न है ?

(५) कठिनाई, असफलता और आलोचना होने पर उसका व्यवहार :—क्या उसमें सुधार के प्रति दिये गये सुझावों को स्वीकार करने की वृत्ति है ? शाला में कभी असफलता मिलने पर तथा अपने साथियों की सफलता देखकर उनके प्रति वह क्या भाव रखता है ?

(६) जिम्मेदारी की भावना :—किसी भी कार्य को करने के लिए जिम्मेदारी लेने पर क्या वह उसे पूरा करता है ?

(७) कार्य करने में प्राथमिकता व नेतृत्व :—उसका अपने मित्रों और साथियों पर किस प्रकार का प्रभाव है।

परामर्श की प्रक्रिया

परामर्शक किसी विद्यार्थी के बारे मे तीन महत्त्वपूर्ण प्रक्रियाओं के पश्चात् निर्णय ले सकता है :—

(१) मनोवैज्ञानिक परख

(२) साक्षात्कार

(३) अवलोकन

मनोवैज्ञानिक परख :—मनोवैज्ञानिक परखें मार्गदर्शन के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। इनकी मदद से व्यक्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित जानकारी प्राप्त की जा सकती है :—

(१) व्यक्ति के बारे में बुद्धि या मानसिक योग्यता-स्तर ज्ञात करना अथवा अयोग्यता का निदान करना।

(२) एक ही मापदण्ड द्वारा किसी विद्यार्थी, कक्षा अथवा विद्यालय की दूसरे किसी विद्यार्थी, कक्षा अथवा विद्यालय से तुलना करना।

(३) रुचि, व्यक्तित्व तथा स्वभाव के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

(४) विद्यार्थियों का शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन करना।

बुद्धि और परामर्श

विद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले विभिन्न पाठ्यक्रमों के लिये विभिन्न मात्रा में बुद्धि चाहिए। कुछ विषयों के अध्ययन हेतु, जैसे विज्ञान, ऊंची बुद्धि चाहिए जबकि कुछ विषयों में सामान्य बुद्धि से कार्य चल जाता है। इस प्रकार प्रथम बुद्धि-स्तर का पता लगाने पर छात्र को विषय चयन कराने में सहायता दी जा सकती है। मन्द बुद्धि छात्रों का पता लगा कर तथा प्रतिभावान छात्रों का पता लगा कर उन्हें उनके स्तर के अनुसार शिक्षा दी जा सकती है।

व्यावसायिक मार्गदर्शन में बुद्धि-परीक्षा का सबसे मुख्य उपयोग व्यवसाय-चयन में होता है। जो बुद्धिमान है वह अधिक अच्छा व्यावसायिक चुनाव कर सकता है। यह एक सर्वसाधारण अनुभव है कि जिस व्यक्ति की बुद्धिलब्धि ६६ है वह इन्जीनियरिंग के लिए योग्य नहीं हो सकता चाहे वह शारीरिक रूप से अधिक योग्य क्यों न हो। इसी प्रकार एक व्यक्ति की बुद्धिलब्धि ११२ है। वह किसी कारण से दर्जी का कार्य कर रहा है। वह अपने आपको असन्तुष्ट पायेगा और अन्त में वह इस कार्य में कोई रुचि नहीं लेगा। बुद्धि और व्यवसाय में इस प्रकार निकट का सम्बन्ध होने के कारण परामर्श देने के समय व्यक्ति को वास्तविक परिस्थिति से अवगत करा देने पर व्यवसाय-चयन में सुविधा रहती है। यह गौरवपूर्ण बात है कि अपने देश में बुद्धि-मापन परीक्षण काफी मात्रा में उपलब्ध है जिनका उपयोग आसानी से किया जा सकता है। इसके लिए केवल 'स्थानीय नॉर्म्स' (सामान्यक) तैयार करने की आवश्यकता है। प्रशिक्षित अध्यापक कुछ विशेष प्रशिक्षण से यह नॉर्म्स तैयार करने की कला को जान सकता है।

परामर्श और अभियोग्यता (अभिरुचि)

मार्गदर्शन के क्षेत्र में अभियोग्यता का ज्ञान परामर्शक को परामर्श देने में सहायक होता है। अतः प्रत्येक छात्र की विशिष्ट योग्यता का पता लगाना मार्गदर्शन कार्यकर्त्ता का मुख्य कार्य है। अभियोग्यता की परिभाषा भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न प्रकार से दी है।

वॉरेन ने अपने मनोवैज्ञानिक शब्दकोष में लिखा है "अभियोग्यता ऐसी स्थिति या गुणों का समूह है जो, प्रशिक्षण प्राप्त करने पर कुछ ज्ञान, कौशल (Skill) अथवा प्रतिक्रियाओं को प्राप्त करने की व्यक्ति की योग्यता का संकेत करता है जैसे किसी भाषा को बोलने की योग्यता या संगीत उत्पन्न करने की

योग्यता।" अभियोग्यता की जांच सम्भवतया सबसे अच्छी प्रक्रिया है जिसकी सहायता से परामर्शक परामर्शप्राप्त व्यक्ति के लिए सफलतापूर्वक किसी व्यवसाय का चुनाव करने में सहायता कर सकता है। विशेष अभियोग्यता-परीक्षाओं की सहायता से विशेष व्यवसायों के लिए व्यक्तियों का चयन करना या इस सम्बन्ध में व्यक्ति को जानकारी देना परामर्श के समय सम्भव होता है। व्यक्ति की दृष्टि से भी यह आवश्यक है कि वह भविष्य में असफलता से बचने के लिए अभियोग्यता के अनुसार व्यवसाय में प्रवेश करे। व्यक्ति की शक्ति तथा समय का अपव्यय रोकने के लिए अभियोग्यता परीक्षा अधिक उपयुक्त है। विभिन्न अभियोग्यता परीक्षाओं से व्यक्ति की शक्तियों तथा कमजोरियों का पता लगाया जा सकता है। जब इन तथ्यों को उसकी महत्त्वाकांक्षा, विषयों की उपलब्धि, रुचियों, योग्यता तथा अप्रमाणीकृत विधियों द्वारा प्राप्त की गई अन्य सूचनाओं के आधार पर व्यक्ति को वास्तविकता से परिचय कराया जाता है तब वह अपने ध्येय की ओर सफलतापूर्वक आगे बढ़ सकता है। वर्तमान में अपने देश में यान्त्रिक अभियोग्यता, लिपिक योग्यता, सांख्यिक योग्यता आदि को मापने के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षाएँ उपलब्ध हैं।

परामर्श और रुचि

परामर्श देते समय रुचि का महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि किसी व्यवसाय में सन्तोष मूलतः व्यक्ति की उस व्यवसाय में जो रुचि है उसपर निर्भर करता है। परामर्शक को चार प्रकार से व्यक्ति की रुचि के बारे में ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए :—

(१) वस्तुनिष्ठ ढंग से रुचि की जाँच करना। इसे जांची हुई रुचि कहते हैं।

(२) व्यक्ति की फुर्सत के समय की क्रियाओं का अध्ययन करके। इस प्रकार की रुचि को प्रत्यक्ष रुचि कहते हैं।

(३) व्यक्ति की वस्तुओं, क्रियाओं या व्यवसाय के प्रति इच्छा-अनिच्छा के बारे में अध्ययन करना। इस प्रकार की रुचि को 'व्यावसायिक रुचि' कहते हैं।

(४) उन क्रियाओं की सूची का अंकन कर जिनके प्रति व्यक्ति अपनी इच्छा या अनिच्छा से उत्तर देता है। इस प्रकार की रुचि को 'गणना की गई रुचि' कहते हैं।

मार्गदर्शन में रुचि दो कार्यों में उपयोग में लाई जा सकती है :—

(१) व्यक्ति की रुचि व योग्यता में सह-सम्बन्ध है या नहीं ? इसका अर्थ यह है कि रुचि कल्पना मात्र नहीं है वह योग्यताओं के अनुरूप है। ऐसी स्थिति

में जिस क्षेत्र में रुचि है उसे विकसित करने का प्रयत्न करना चाहिए।

(२) परामर्श-प्रक्रिया में छात्र की कौन से क्षेत्र में अधिक रुचि है इसे अवगत कराया जा सकता है। अवांछनीय रुचि को दूर करना परामर्शक का कर्त्तव्य है।

परामर्श, व्यक्तित्व और स्वभाव

व्यक्तित्व शब्द इतना व्यापक है कि उसकी विस्तृत परिभाषा देना जिस पर सब मनोवैज्ञानिक सहमत हो सकें, बड़ा कठिन है। साधारणतया एक सामान्य दृष्टिकोण से हम व्यक्ति के वाह्य स्वरूप, वेशभूषा, आचरण, व्यवहार आदि के योग को व्यक्तित्व का नाम दे देते हैं। वास्तविक रूप में व्यक्तित्व का स्वरूप इससे अधिक व्यापक है। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से भिन्न है। अतः प्रत्येक व्यक्ति में अपनी-अपनी कुछ विशिष्टताएँ होती हैं और उसके चरित्र के गुण होते हैं जिनके कारण उसमें अन्य व्यक्तियों की तुलना में कुछ विशिष्टता आ जाती है। जैसे व्यक्ति का साहसी, स्पष्ट, ईमानदार, धैर्यवान आदि होना व्यक्ति की विशिष्टता बतलाता है। उस व्यक्ति के सब गुणों (और अवगुणों यदि हों) का योग उसके व्यक्तित्व को बनाता है। मन (Munn) के अनुसार व्यक्तित्व व्यक्ति की रचनाओं, व्यवहार के ढंगों, रुचियों, अभिवृत्तियों, शक्तियों, योग्यताओं तथा अभिरुचियों का योग है।

परामर्शक को केवल क्षमता, रुचि, महत्त्वाकांक्षा को ही नहीं देखना है किन्तु व्यक्तित्व के गुण जैसे प्रभावशीलता, हावभाव, विचारों की स्पष्टता, व्यक्त करने का ढंग, अन्तर्मुखी या बहिर्मुखी, संवेगात्मक स्थिरता आदि का अध्ययन करना चाहिए। व्यक्तित्व के समस्त गुण व्यक्ति के व्यावसायिक सन्तुलन और सफलता में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अतः व्यक्ति के व्यक्तित्व का निदान करना महत्त्वपूर्ण है जिससे यह देखा जा सके कि उसमें वे गुण वर्तमान हैं या नहीं जो उसके द्वारा चुने जाने वाले व्यवसाय में उसे सफलता दिला सकें।

५

विद्यालयों में निर्देशन कार्यक्रमों का संगठन

निर्देशन-कार्य को विद्यालयों में सफलतापूर्वक चलाने के लिए आवश्यक है कि यह कार्यक्रम संगठित तथा व्यवस्थित रूप में हो। इस सम्बन्ध में को तथा को ने अपने विचार निम्नलिखित प्रकार से प्रकट किये हैं :

(१) मार्गदर्शन सम्बन्धी सेवाओं का निश्चित संगठनात्मक रूप प्रस्तुत करना और इनका कहना कि यह ऐसा रूप है, असम्भव तथा अबुद्धिमत्तापूर्ण कार्य होगा।

(२) मार्गदर्शन का कार्यक्रम लचीला होना चाहिए ताकि आवश्यकतानुसार उस कार्यक्रम में परिवर्तन किया जा सके।

(३) मार्गदर्शन के कार्यक्रम में समस्त सम्बन्धित व्यक्तियों का सहयोग होना चाहिए।

निर्देशन की सेवाओं का रूप

(१) केन्द्रीय रूप—इस प्रकार के मार्गदर्शन में सहायता देना प्रशिक्षित व्यक्तियों का कार्य होता है। मार्गदर्शन सम्बन्धी अधिकांश गतिविधियाँ या कार्यक्रम केन्द्रीय निर्देशन कार्यालय से निकलते हैं। छात्र का मापदण्ड तथा रिकार्ड रखना मार्गदर्शन कर्मचारियों का मुख्य उत्तरदायित्व है और विशेषज्ञों को निश्चित कर्त्तव्य सौंपे जाते हैं।

(२) विकेन्द्रीय रूप—इसमें मार्गदर्शन सेवाओं का दायित्व लगभग पूर्ण रूप से स्कूल के अध्यापकों पर ही डाला जाता है। मार्गदर्शन में रुचि रखने वाले अध्यापक अपने छात्रों को श्रेष्ठ और सामयिक सहायता दे सकते हैं

इससे नवयुवक जल्दी ही समझ जाते हैं कि उनकी कठिनाई के समय में वे कौन-से अध्यापकों पर सहायता के लिए निर्भर कर सकते हैं।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के रूपों में कुछ गुण हैं तथा कुछ दोष हैं अतः मार्गदर्शन के कार्यक्रम का रूप इन दोनों का मिश्रित रूप होना चाहिए।

(३) मिश्रित रूप—इसमें कुछ दायित्व विशेषज्ञों को सौंप दिये जाते हैं और कुछ अध्यापकों तथा शाला के अन्य कर्मचारियों द्वारा ग्रहण कर लिये जाते हैं। उदाहरण के लिए छात्रों सम्बन्धी सूचनाएँ एकत्रित करना अध्यापक का कार्य है। व्यावसायिक कार्य दिलवाना विशेषज्ञों का कार्य है।

निर्देशन सेवाओं का संगठन

इस कार्यक्रम से सम्बन्धित कुछ मूलभूत कल्पनाएँ हैं जिन पर कार्य शुरू करने से पूर्व विचार करने की आवश्यकता है। इनका सम्बन्ध (१) प्राप्त लक्ष्यों, (२) किये जाने वाले कार्य, (३) दायित्व सौंपने और सत्ता प्रदान करने तथा कार्यक्रम की अन्तिम सफलता का मूल्यांकन करना है।

(१) कार्यक्रम के लक्ष्य—किसी भी कार्यक्रम के पीछे कुछ स्पष्ट और निश्चित लक्ष्य होने चाहिएँ। प्रत्येक शिशु, नवयुवक अथवा वयस्क जिसकी सेवा करनी है उसकी मार्गदर्शन सम्बन्धी निश्चित आवश्यकताओं का मूल्यांकन करना आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति पर वातावरण के प्रभाव का विचार करने की आवश्यकता है जैसे उसकी जातीय, पारिवारिक पृष्ठभूमि, उसकी स्वास्थ्य की स्थिति, उसकी मानसिक क्षमता, उसकी रुचियाँ, योजनायें तथा आसपास का वातावरण आदि।

(२) किये जाने वाले कार्य—लक्ष्य निश्चित कर लेने के उपरान्त उनकी प्राप्ति के लिए किये जाने वाले कार्यों का निर्णय करना चाहिए यद्यपि मार्गदर्शन का कार्यक्रम हमेशा स्थिर नही रह सकता। व्यावसायिक अवसर, यातायात की विकसित सुविधाएँ, निर्वासितों का बसाना आदि कारणों से समस्याओं का स्वरूप बदलता रहा है। इन सभी को ध्यान मे रखकर मार्गदर्शन के कार्यक्रम की रूपरेखा बनानी चाहिए।

(३) उत्तरदायित्व का विभाजन—निर्देशन कार्यक्रम का संगठन करने से पूर्व यह आवश्यक है कि स्कूल मे कौन-से कर्मचारी इस मार्गदर्शन सम्बन्धी कार्यक्रम में रुचि रखते हैं। उन्हें उनकी रुचि के अनुसार मार्गदर्शन का कार्य देना चाहिए। प्रत्येक कर्मचारी को यह समझ लेना आवश्यक है कि उसके तथा अन्य कर्मचारियों के कर्त्तव्यों में क्या सम्बन्ध है। उदाहरणार्थ आठवीं कक्षा को

पढ़ाने वाले अध्यापकों का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने-अपने विषय के बारे में अधिक-से-अधिक जानकारी दें।

कार्यक्रम का मूल्यांकन—इस मूल्यांकन का उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि जिन लक्ष्यों को पूर्ण करने के लिए मार्गदर्शन का कार्यक्रम बनाया गया, उसमें कितनी सफलता प्राप्त हुई। सामाजिक व्यवस्था मे परिवर्त्तनों, छात्रो की नवीन आवश्यकताओं आदि के कारण मार्गदर्शन कार्यक्रम मे निरन्तर परिवर्त्तन हो रहे हैं। ऐसी स्थिति मे कार्यक्रम समय के अनुसार है या नही यह जानने के लिए भी मूल्यांकन की आवश्यकता है।

कार्यक्रम के संगठन के पूर्व विचारणीय तथ्य

इस सम्बन्ध में विचारणीय तथ्य निम्नलिखित हैं :—

(१) छात्रों को किन-किन अनुभव क्षेत्रो मे सहायता की आवश्यकता है।

(२) कार्यक्रम को कार्यान्वित करने में कितने मनुष्यों तथा कितने समय की आवश्यकता होगी ? क्या वे उपलब्ध हैं ?

(३) विविध कार्यों के सहयोग मे कौन-कौन से अध्यापक योग्यता प्राप्त हैं ?

(४) कर्मचारियों की संख्या बढ़ाने की आवश्यकता है ?

(५) क्या स्कूल के प्रधानाचार्य तथा अन्य अध्यापक कार्यक्रम के विकास के लिये पर्याप्त समय तथा शक्ति लगाने के लिये तैयार हैं ?

(६) कार्यक्रम को सुचारु रूप से चलाने के लिए क्या विद्यालय मे समुचित स्थान उपलब्ध है ?

(७) मार्गदर्शन की सामग्री खरीदने के लिये क्या स्कूल बजट में धन की व्यवस्था हो सकेगी या है ?

(८) क्या कार्यक्रम में माता-पिता रुचि रखते हैं और वे उसमें सहयोग देंगे ?

(९) मार्गदर्शन के कार्यक्रम को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा विभाग के अधिकारियों, जैसे विद्यालय निरीक्षक, अन्य प्रधानाध्यापक आदि का क्या रुख है ?

(१०) कार्यक्रम का महत्त्व समझने की दिशा में छात्रों को किस प्रकार प्रेरित किया जा सकता है?

उपर्युक्त प्रश्नों के पक्ष में यदि आंशिक उत्तर भी प्राप्त हों तभी प्रारम्भिक कार्यों का विस्तार किया जाय।

निर्देशन कार्यक्रम के प्रकार

अन्तिम रूप से निर्धारित निर्देशन का कार्यक्रम कुछ आधारभूत तथ्यों पर निर्भर करता है। वे निम्नलिखित हैं :—

(१) विद्यालय का स्तर :—प्राथमिक विद्यालय में विद्यार्थियों की संख्या कम होती है। अतः उनकी आवश्यकताएँ तथा समस्याएँ भी कम होती हैं। ऐसी स्थिति मे किसी विशेषज्ञ की आवश्यकता नही होती। मार्गदर्शन का कार्य कक्षाध्यापक स्वयं कर सकता है। इसके विपरीत उच्च माध्यमिक विद्यालयों में छात्रों की अधिक संख्या, समस्याओं में अधिक भिन्नता आदि कारणों से यह कार्य विशेषज्ञ को सौंप दिया जाता है। यह कार्यक्रम अधिक व्यवस्थित होना चाहिए।

(२) विद्यालय का आकार :—जहाँ विद्यालय छोटा है वहाँ अधिक विशेषज्ञों की आवश्यकता नही होती। बड़े विद्यालयों में एक से अधिक व्यक्ति इस कार्य के लिए अलग से नियुक्त किये जा सकते हैं जैसे बहुद्देशीय विद्यालय में पूर्णकालीन मार्गदर्शनकर्त्ता जिसे विद्यालय परामर्शक कहते हैं, उसकी नियुक्ति सम्भव है। विशेषज्ञ अन्य अध्यापकों की मदद से अपने कार्यों को पूर्ण करता है।

(३) उपलब्ध सुविधाएँ :—विद्यालयों मे यदि अधिक सुविधाएँ हैं जैसे शैक्षणिक तथा व्यावसायिक सामग्री को रखने के लिये अलग कमरा, उसमे बैठने के लिए मेज आदि तो मार्गदर्शन कार्यक्रम व्यवस्थित रूप से चल सकता है।

विद्यालयों में निर्देशन-व्यवस्था या संगठन

कोई भी मार्गदर्शन व्यवस्था सभी विद्यालयों में एक ही प्रकार से काम में नही ली जा सकती। अतः इसमें लचीलापन होना आवश्यक है जिससे कि विद्यालय की आवश्यकताओं तथा आर्थिक साधनों के अनुसार कार्यक्रम में परिवर्तन किया जा सके।

(१) प्रारम्भिक विद्यालयों में निर्देशन की व्यवस्था

छात्रों की संख्या कम होने के कारण उनकी समस्याएँ कम होती हैं। अतः इस स्तर पर मार्गदर्शन का कार्य अध्यापक करता है। निम्न रेखाचित्र प्राथमिक विद्यालय स्तर पर मार्गदर्शन की व्यवस्था को स्पष्ट करता है :—

विद्यालय के बाहर के साधन	शाला	सामाजिक संस्थायें
१. माता-पिता	प्रधानाध्यापक	१. वाय. एम. सी. ए.
२. डॉक्टर	निर्देशन का अध्यक्ष	२. रोटरी क्लब
३. नर्स	|	
४. वकील	कक्षा के अध्यापक	
५. नियोजन कार्यालय	|	
६. मनोवैज्ञानिक	विद्यार्थी	

प्राथमिक स्तर पर निर्देशन कार्यक्रम का लक्ष्य

(१) व्यक्तिगत छात्रों की आवश्यकता, समस्याएं तथा गुणों का अवलोकन।

(२) अवलोकित तथ्यों का संकलित आलेख-पत्र में समावेश करना।

(३) विद्यालयों के बाहर की समस्याओं से ग्रसित बालकों को पहचानना जैसे—सामाजिक या संवेगात्मक समायोजन में कठिनाई, विषयों में कमजोरी अनुभव करना, खराब स्वास्थ्य।

(४) माता-पिता एवं विद्यालय के मध्य मधुर सम्बन्ध स्थापित करना।

(५) छात्रों के विकास का निरन्तर मूल्यांकन।

माध्यमिक विद्यालय में निर्देशन की व्यवस्था

माध्यमिक विद्यालय मे निर्देशन की व्यवस्था निश्चित रूप धारण कर लेती है। इस संबंध का रेखाचित्र निम्नलिखित है :
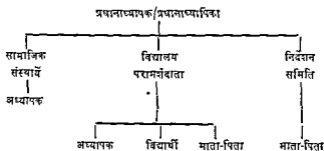
उपर्युक्त चित्र से स्पष्ट है कि मार्गदर्शन समिति तथा विद्यालय परामर्शदाता मार्गदर्शन के कार्यक्रम में प्रधानाध्यापक की सहायता करते हैं। अध्यापक को माता-पिता तथा मार्गदर्शन समिति से भी सम्पर्क स्थापित करना होता है। परामर्शदाता मुख्य व्यक्ति होता है जो मार्गदर्शन के कार्यक्रम में मुख्य स्थान प्राप्त करता है।

उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में निर्देशन की व्यवस्था

इस समय छात्र विभिन्न व्यवसायों के सम्बन्ध में अधिक-से-अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं या विश्वविद्यालयी शिक्षा सम्बन्धी सूचना प्राप्त करना चाहते हैं। अतः उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में निर्देशन कार्यक्रम तथा मार्गदर्शन कर्मचारी अधिक संख्या में होते हैं। उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में विद्यालय का प्रधानाध्यापक कार्यभार अधिक होने के कारण मार्गदर्शन पर अधिक ध्यान नहीं दे पाता। अतः वह मार्गदर्शन के कार्य संबंधी जिम्मेदारी विद्यालय की मार्गदर्शन समिति को सौंप देता है। इस स्तर पर विशेषज्ञों की विशेष रूप से आवश्यकता होती है।

संगठित निर्देशन कार्यक्रम का संचालन

निर्देशन के कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए उसका प्रशासन तथा संचालन ऐसे योग्य व्यक्तियों द्वारा होना चाहिए जो मार्गदर्शन के विविध कार्यों में गति व रुचि रखते हों। इसके अतिरिक्त विविध उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए पर्याप्त स्थान, उपकरण और सामग्री की व्यवस्था होनी चाहिए।

नगर-व्यापी या व्यक्तिगत स्कूल मार्गदर्शन के कार्यक्रम के लिए निम्नलिखित की व्यवस्था आवश्यक है।

(१) व्यक्तिगत परामर्श करने के लिए तथा विद्यालय के एक स्तर से दूसरे स्तर में प्रगति करने पर संकटमय स्थिति में छात्रों की सहायता करने के लिए पर्याप्त संख्या में पूर्णकालीन मार्गदर्शनकर्ता (Guidance Worker) की सेवाएँ।

(२) सामूहिक निर्देशन का कार्यक्रम।

(३) परामर्श सेवाएँ।

(४) विभिन्न शैक्षणिक तथा व्यावसायिक एवं अन्य जानकारी प्राप्त करना तथा छात्रों को प्रदान करना।

(५) छात्रों का विवरण (उपस्थिति और जनगणना)।
(६) अपवाद स्वरूप छात्रों का मार्गदर्शन जैसे मन्दबुद्धि या प्रतिभावान बालकों की सहायता प्रदान करना।
(७) पूरे समय की या अल्पकालीन नौकरी या सेवाएँ।
(८) घर और विद्यालय में सहयोग।
(९) अध्यापक, परामर्शदाता तथा अन्य कर्मचारियों का नौकरी में रहते हुए प्रशिक्षण जिसका उद्देश्य उन्हें शिक्षा, मार्गदर्शन की रूपरेखा, मार्गदर्शन के तन्त्र आदि से परिचित कराना।

भौतिक उपकरण

अत्यन्त उच्च कोटि की मार्गदर्शन सेवाएं मार्गदर्शन में रुचि रखने वाले अध्यापकों तथा अन्य वयस्कों द्वारा अत्यन्त अनौपचारिक स्थितियों में की जा सकती हैं। विद्यालय के कैफेटेरिया, सहकारी भंडार, स्कूल के बरामदे या अपने घर में आराम कुर्सी पर बैठे-बैठे भी मार्गदर्शन में भाग लेना सम्भव है। इस प्रकार के अनौपचारिक रूप से मार्गदर्शन कार्यक्रम में सफलता प्राप्त करने के लिए परामर्शपात्र या सम्बन्धित बालक के सम्बन्ध में बहुत अधिक जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है।

मार्गदर्शन कार्यालय और परामर्श कक्ष के लिये चुने गये कमरे, विद्यालय का स्तर तथा विद्यालय के आकार के अनुसार भिन्न-भिन्न संस्थाओं में भिन्न-भिन्न आकार के होते हैं।

मार्गदर्शन कार्यालय चाहे कितने ही अधिक, कितने ही कम, कितने ही बड़े या कितने ही छोटे क्यों न हों, वे मैत्रीपूर्ण कमरे होने चाहिएँ। उनकी सज्जा यदि साधारण किन्तु आकर्षक हो, डेस्क, मेजें और फाइलों के सिरे व्यवस्थित हों और सामान्य वातावरण शान्त, आरामदेह और आनन्ददायक हो तो नवयुवक और वयस्क प्रसन्नतापूर्वक वहाँ आते हैं। जो मार्गदर्शन कर्मचारी उनका स्वागत और सेवा करने के लिए प्रस्तुत हैं उनकी सच्चाई और सहयोग से उन्हें विश्वास होता है।

मार्गदर्शन के क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्ति जैसे परामर्शदाता आदि में जिस प्रकार की भावना होती है वह भी अधिक महत्व रखती है। किन्तु निम्नलिखित बातों पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है :—

कार्यालय की स्थिति, फर्नीचर के प्रकार और व्यवस्था, रिकार्ड, रिपोर्ट, मार्गदर्शन के विभिन्न प्रपत्र, पर्याप्त मात्रा में फाइलें, उपकरणों की पर्याप्तता

और मनोवैज्ञानिक परीक्षा सामग्री, मार्गदर्शन के विषय पर पुस्तकें आदि अन्य साधन हैं।

वर्तमान स्थिति में देखा गया है कि इस कार्य के लिए निर्धारित कमरा बहुधा अंधेरा और उमस भरा होता है, विद्यालय भवन के किसी कोने में छिपा होता है और अन्य उपयोगों के लिए अवांछनीय होता है। कक्षा के कमरे प्रकाशमय एवं आनन्ददायक होने चाहिएँ और ऐसे ही मार्गदर्शन कार्यालय होने चाहिएँ। ये सभी विद्यालयों के छात्रों और अध्यापकों की गतिविधियों के केन्द्र बन सकते हैं (जो कि बनने चाहिएँ)।

कमरे के स्थान की व्यवस्था के सम्बन्ध मे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मार्गदर्शन का कार्य विशाल अविभक्त कमरों में किया जाय जहाँ परामर्शदाताओं या अन्य मार्गदर्शनकर्त्ताओं की डेस्कें इस प्रकार से लगी हों जिससे सबके लिए कुछ मात्रा मे गोपनीयता बनी रहे। इसके अतिरिक्त कमरे में एक लम्बी वाचनालय की मेज भी रखी जा सकती है जिससे परामर्शदाता से बात या साक्षात्कार करने के लिए छात्र वहाँ बैठकर अध्ययन कर सकें। यदि इस योजना को स्वीकार कर लिया जाय तो विद्यालय के भवन में कहीं भी एक छोटा कार्यालय होना चाहिए जिसका उपयोग भावनात्मक दृष्टि से ग्रस्त-व्यस्त छात्र या अभिभावक से व्यक्तिगत साक्षात्कार या बातचीत करने के लिए किया जा सके। मनोवैज्ञानिक परीक्षाएँ देने के लिए भी इस कार्यालय का उपयोग किया जा सकता है।

निर्देशन-कार्यालय का फर्नीचर और उपकरण

मार्गदर्शन के उपकरण के रूप में कम-से-कम कुछ अनिवार्य फर्नीचर होना चाहिए। यह फर्नीचर है डेस्क, कुर्सियाँ, फाइलें रखने के लिये एक आलमारी, पढ़ने की मेज, काम करने की मेज, किताबों की आलमारी, पत्र-पत्रिका रखने की रैकें और यदि सम्भव हो सके तो उस सामग्री को रखने के लिए अलग कक्ष हो जिसकी तत्काल आवश्यकता नहीं पड़ती। यदि कार्यालय में पर्याप्त स्थान न हो तो वे कक्ष भवन के दूसरे भाग में भी हो सकते हैं।

रिकॉर्ड कार्डों, प्रथम साक्षात्कार प्रपत्र तथा दैनिक उपयोग में आने वाली अन्य सामग्री की नियमित व्यवस्था के लिए विभिन्न प्रकार और विभिन्न आकार की बहुत-सी फाइलें रखने की आलमारियाँ होनी चाहिएँ। फाइलें रखने की बहुत-सी आलमारियाँ देखने वालों पर प्रभाव डालती हैं। रिकार्ड और

रिपोर्टें आवश्यक तो हैं, किन्तु उसी सीमा तक वे आवश्यक हैं जहाँ तक मार्ग-दर्शन के कार्यों मे वास्तविक लाभ दे सकें।

पुस्तकों के खानों और पत्र-पत्रिका के रैकों मे उच्च अध्ययन की संस्थाओ से सम्बन्धित आवश्यक और नवीनतम सामग्री, व्यवसायों पर लिखी गई पुस्तकें तथा मार्गदर्शन से सम्बन्धित समस्त व्यक्ति जैसे अध्यापक, अभिभावक, छात्रो आदि के लाभ की अन्य मुद्रित सामग्री होनी चाहिए। जिस विद्यालय के भवन मे मार्गदर्शन के कार्यालय के लिये पृथक् स्थान की कमी है वहाँ ऐसी सामग्री स्कूल के नियमित पुस्तकालय में रखी जाती है और वहाँ देखी जा सकती है यद्यपि भवन मे उनका कहीं भी उपलब्ध होना लाभदायक है।

अब प्रश्न यह है कि परामर्शदाता की डैस्क और साक्षात्कार के लिए आने वाले विद्यार्थी की कुर्सी किस प्रकार रखी जाय। पहली बात यह है कि परामर्शदाता और परामर्शपात्र दोनों की कुर्सियाँ आरामदेह होनी चाहिएँ, यदि आराम कुर्सी हो तो और भी अच्छा हो। दूसरे, विद्यार्थी की कुर्सी इस प्रकार रखनी चाहिए कि उसके मुख पर प्रकाश न पड़े। यदि किसी को बैठना ही पड़े तो परामर्शदाता को प्रकाश की ओर मुँह करके बैठना चाहिए न कि छात्र को। चाहे किसी भी विषय पर विचार-विमर्श किया जा रहा हो, शारीरिक दृष्टि से स्थिति आरामदेह होनी चाहिए।

उपर्युक्त चित्रों, फूलों, पौधों तथा अन्य साधारण किन्तु आकर्षक वस्तुओ की उपस्थिति से निर्देशन कार्यालय मे मैत्री तथा प्रसन्नता का वातावरण बन सकता है। उदाहरण के तौर पर, प्रतिभावान छात्रों द्वारा या चित्रकला मे रुचि रखने वाले छात्रों के बनाये हुए चित्र, कार्यालय मे दान दिये गये तथा छात्रों द्वारा देखभाल किये गये पौधों तथा छात्रो एवं अध्यापकों ने यदि बाग से विभिन्न पुष्पावलियाँ प्राप्त की हों आदि सामग्री से मार्गदर्शन कक्ष बड़े गौरव से सजा कर रखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त फोटोग्राफी क्लब द्वारा खींचे गये चित्र, विद्यार्थी द्वारा निर्मित पोस्टर, चार्ट आदि भी मार्गदर्शन के कार्यालय मे रखे जा सकते हैं। इससे यह अपना कमरा है ऐसी भावना से हर छात्र देखने लगता है तथा उसे आकर्षक बनाए रखने में गौरव अनुभव करने लगता है।

बजट सम्बन्धी विचारणीय बातें

निर्देशन की सफल सेवा संचालन के लिए पर्याप्त धन की आवश्यकता होती है।

समाज का रवैया—विद्यालय का मार्गदर्शक अध्यापक या परामर्शदाता

छात्रों को आरम्भ में जो परामर्श देते हैं वह अभिभावक के रूप में अपने बच्चों को दी जाने वाली सलाह से अधिक भिन्न होती है। इसी कारण बच्चा परामर्शक द्वारा दिये गये परामर्श पर अधिक ध्यान नहीं देता।

प्रारम्भ में फर्नीचर तथा अन्य सामग्री को खरीद कर मार्गदर्शन कक्ष अधिक सुसज्ज बनाने के लिए पैसे की काफी आवश्यकता होती है, किन्तु प्रशिक्षित मार्गदर्शन-कर्त्ता, क्लर्कों, मनोवैज्ञानिक, विभिन्न परीक्षाएं, उनके उत्तर-पत्र, रिकार्ड के रिक्त प्रपत्रों और मार्गदर्शन सम्बन्धी साधनों के लिए प्रति वर्ष धन-राशि की आवश्यकता होती है।

विद्यार्थियों के विकास के विभिन्न स्तरों पर आवश्यकताएं

विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास करना शिक्षा का मुख्य ध्येय है। इस ध्येय को ध्यान में रखकर हमें उसकी चारों अवस्थाएँ—शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था तथा प्रौढावस्था की आवश्यकताओं को ध्यान में रखना आवश्यक है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सर्वसाधारण की आवश्यकताएँ

यह आवश्यकताएँ आशा, भय, महत्त्वाकांक्षा, जीवन में सुख और समृद्धि से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती हैं। इनके अतिरिक्त कुछ और मानसिक अनुभूतियाँ होती हैं जैसे स्वामित्व, सक्रिय सहयोग, सम्मान और सुरक्षा। मानव की इच्छाओं की पूर्ति सुखी जीवन का मनोवैज्ञानिक आधार है। उनको प्राप्त करने में असफलता से निराशा उत्पन्न होती है। इस प्रकार की निराशा से व्यवहार में किसी प्रकार की कमी आ जाती है जैसे छेड़छाड़, झगड़ा करना, दूसरों से दुश्मनी रखना, पारिवारिक जीवन दुःखी होना आदि।

विकास की आवश्यकताएँ

बालक व किशोर की समस्याएँ युवक की समस्याओं से भिन्न हैं। कोई व्यक्ति किसी स्तर पर कहाँ तक स्वामित्व, सम्मान या सुरक्षा प्राप्त करता है यह उसकी समस्याओं को सुलझाने की योग्यता पर निर्भर करता है। बच्चे के विकास के विभिन्न स्तरों पर निम्नलिखित आवश्यकताएँ होती हैं:—

(अ) शैशवावस्था :—जन्म से ५ वर्ष की उम्र तक।

(i) भोजन खाना सीखना।

(ii) चलना सीखना।

(iii) बोलना सीखना।

(iv) मलमूत्र त्याग करना सीखना।

(v) लैंगिक सद्व्यवहार सीखना।

(vi) भौतिक संसार की साधारण रूपरेखा समझना।

(vii) सही और गलत में पहिचान करना।

(viii) अपने भाई-बहन और माता-पिता के साथ उचित व्यवहार करना सीखना।

(आ) बाल्यावस्था :—लगभग ५ वर्ष से १२ वर्ष तक।

(i) कपड़े पहिनना सीखना तथा स्वच्छ रहना सीखना।

(ii) शारीरिक निपुणता जैसे खेल खेलना सीखना।

(iii) साथियों के साथ रहना सीखना।

(iv) जीवन के लिए आवश्यक बातों को सीखना (लिखना, पढ़ना व हिसाब)।

(v) जीवन के लिए आवश्यक विचार बनाना।

(vi) जीवन के मूल्यों का ज्ञान प्राप्त करना।

(vii) जाति, धर्म, समाज, विद्यालय, सरकार, राष्ट्र के प्रति उचित दृष्टिकोण का निर्माण।

(viii) संवेगों पर अधिकार प्राप्त करना सीखना।

(ix) अपने स्वयं के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण को अपनाना सीखना।

(इ) किशोरावस्था :—लगभग १२ वर्ष से १८ वर्ष तक।

(i) अपने नैसर्गिक शारीरिक निर्माण को स्वीकार करके पुलिंग या स्त्रीलिंग का स्थान स्वीकार करना।

(ii) दोनों लिंगीय मित्रों के साथ नये सम्बन्ध स्थापित करना।

(iii) माता-पिता से संवेगात्मक स्वतन्त्रता प्राप्त करना।

(iv) आर्थिक स्वतन्त्रता के प्रति आश्वस्त होना।

(v) व्यवसाय का चुनाव और उसके लिए तैयारी करना।

(vi) सामाजिक योग्यता के लिए बौद्धिक गुण और विचार बनाना।

(vii) सामाजिक जिम्मेदारीपूर्ण व्यवहार अपनाना और ऐसा उचित व्यवहार करना।

(viii) विवाह और पारिवारिक जीवन के लिए तैयारी करना।

(ix) सौन्दर्य-बोधक तथा नैतिक मूल्यों का निर्माण करना।

(ई) प्रौढावस्था अथवा युवावस्था—१८ वर्ष से बाद की आयु तक

(i) अपने आपको किसी व्यवसाय में स्थिर बनाना।

(ii) विवाह और प्रेम।

(iii) परिवार और घर बसाना।

(iv) सामाजिक योग्यता के लिए ज्ञान और आलोचनात्मक योग्यता का निर्माण करना।

(v) धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि कार्यों में युवक की जिम्मेदारियों को पूरा करना।

ऊपर दी हुई सभी आवश्यकताएँ शालीय पाठ्यक्रम पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालती हैं। अतः पाठ्यक्रम बनाते समय बच्चे की विभिन्न स्तर पर जो आवश्यकताएँ हैं उनकी पूर्ति करने की दृष्टि से तैयार करना चाहिए।

(२) परामर्शक और किशोर की समस्याएँ

किशोरों से सम्बन्धित व्यक्तिगत और सामाजिक समस्याओं के बारे में किये गये अनुसन्धान यह बतलाते हैं कि माध्यमिक शालाओं में मार्गदर्शक कार्यकर्त्ताओं का विशेष महत्व है। परामर्शक को परामर्श प्राप्तकर्त्ता को परामर्श देने से पहले उसकी समस्याओं को जानना और अध्ययन करना आवश्यक है। अध्ययन के प्रचलित ढंग 'प्रश्नावली' एवं'साक्षात्कार' हैं। ये दोनों प्रकार उन समस्याओं का पता लगाते हैं जो छात्रों को अधिक परेशान करती हैं। सूचना हमेशा पूर्ण तथा तैयार होनी चाहिए।

(1) सामाजिक सामंजस्य

(i) अपने मित्रों के साथ किस प्रकार का व्यवहार रखना ?

(ii) किस प्रकार सामाजिक रूप से अपना स्थान बनाना ?

(iii) किस प्रकार आमोद-प्रमोद मनाना ?

(iv) विवाह के बारे में कैसे निर्णय लेना ?

(v) मित्रों का कैसे चुनाव करना ?

(vi) आमोद तथा प्रमोद के लिए सुविधाएँ जुटाना ?

(vii) कौन-सी पोशाक पहनना ?

(viii) अन्य छात्रों का कैसे सामना करना ?

(२) स्वास्थ्य

(i) खान, पान, व्यायाम, आसन, नींद और आराम।

(ii) कपड़े, स्नान और शारीरिक अंगों का ध्यान।

(iii) सफाई और बीमारी की रोकथाम।

(iv) थकान और दवाओं का प्रयोग।

(३) पारिवारिक सम्बन्ध

(i) माता-पिता और बच्चे के बीच जीवनयापन के संबंध में मतभेद।

(ii) माता-पिता और बच्चे के बीच मधुर सम्बन्धों और विचारों का मतभेद।

(iii) भाई-बहनों में संघर्ष।

(iv) माता-पिता के साथ बिताने वाले समय में कमी।

(v) सम्बन्धियों के साथ अच्छे सम्बन्ध न होना।

(vi) धन या पैसे का कमाना, खर्च करना तथा बचत करना।

(४) समय की समस्या

(i) किस प्रकार समय का सदुपयोग करना ?

(ii) कैसे अध्ययन करना और किस समय अध्ययन करना ?

(iii) फुर्सत के समय को कैसे बिताना ?

(iv) शाला के समय काटने वाले विषयों को कैसे पढ़ना ?

(५) व्यक्तित्व की समस्याएँ

(i) अच्छी स्मरण-शक्ति कैसे बढ़ायें ?

(ii) रुचि की कमी को कैसे दूर करें ?

(iii) सहनशील, चातुर्य, विस्तृत विचार वाले कैसे बनें ?

(iv) मित्रों को कैसे आकर्षित करें ?

(v) शारीरिक आकर्षण कैसे पैदा करें ?

(vi) क्रोध, स्वार्थपरता और ईर्ष्या पर कैसे विजय पायें ?

(vii) चरित्र का सन्तुलन कैसे बढ़ायें और कायरता पर कैसे विजय प्राप्त करें ?

(viii) भय, चिन्ताएँ, आत्महीनता कैसे दूर करें ?

(ix) अनिश्चय, दिखावट, गन्दी तथा आदतों का कैसे ध्यान रखें ?

(६) यौन-वृत्ति का अनुभव

(i) प्रेम और कामना।

(ii) लाड़ दिखाना।

(iii) विवाह।

(७) अंशकालीन धन्धा और पैसा

(i) किस प्रकार आवश्यक कार्यों को करने के लिए पैसा प्राप्त करें ?

(ii) अंशकालीन धन्धा कैसे ढूंढें ?

(iii) कैसे पैसा कमा कर शालाओं में पढ़ाई जारी रखें ?

(iv) अंशकालीन रोजगार को कैसे करें ?

(v) पैसे को बुद्धिमानीपूर्वक कैसे खर्च करें ?

(vi) शाला का खर्च कैसे चलाएं ?

(vii) आमोद-प्रमोद, सिनेमा के लिए पैसे कैसे बचाएं ?

(८) भावी जीवन की समस्याएं

(i) व्यवसाय का निर्णय करना।

(ii) शिक्षा को चालू रखना।

(iii) शैक्षिक सफलता प्राप्त करना।

(iv) व्यावसायिक सफलता प्राप्त करना।

परामर्शक को उपरोक्त समस्याओं के अतिरिक्त मार्गदर्शन के कार्यक्रम में निम्नलिखित बातों पर भी ध्यान देना चाहिए :

(i) शालीय शैक्षिक और व्यावसायिक कार्यक्रम को आगे बढ़ाना।

(ii) अंशकालीन सेवाओं के लिए नियोजन की व्यवस्था करना। इसके लिए अच्छा हो यदि निकटतम नियोजन कार्यालय से सम्पर्क स्थापित किया जाय।

(iii) विद्यार्थियों की शैक्षिक कठिनाइयों का विश्लेषण करना और पाठन विधियों एवं पाठ्यक्रम का उन परिस्थितियों में मूल्यांकन करना।

(iv) निर्देशन—पाठ्यक्रम समावेश के आधार पर विद्यार्थियों की अपनी प्रतिदिन की मनोवैज्ञानिक समस्याओं जैसे पढ़ने में मन नहीं लगता आदि को सुलझाने के अवसर प्रदान करने चाहिएं।

(v) स्वास्थ्य को शाला का एक उद्देश्य मानकर उसके लिए सामाजिक कार्यकर्ताओं का सहयोग प्राप्त करना जैसे किसी चिकित्सक या नर्स की सहायता से वार्ता दिलवाना तथा बच्चे के स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रश्नों को सुलझाना।

सामाजिक और शैक्षिक समस्याओं सम्बन्धी सन्तुलन

प्रत्येक व्यक्ति अपने को सन्तुलित करना तथा अपने व्यक्तित्व को पूर्ण रू से विकसित करना चाहता है। विकास एक पक्षीय नहीं होना चाहिए। बच्चे को वर्त्तमान परिस्थितियों से सन्तुलन तथा भविष्य के वातावरण में सफलता पूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिये तैयार किया जाय।

विद्यालयों में पढ़ाया जाने वाला पाठ्यक्रम सामाजिक वास्तविकताओं को देखते हुए परखा जाना चाहिये। हमें अपनी प्रमुख सामाजिक समस्याओं स्वास्थ्य, खाली समय, समय की प्रवृत्तियाँ, पारिवारिक जीवन इस प्रकार अन्य बातों पर आधारित तथ्यों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। सामाजिक व्यवहार आचार संहिता समाज में प्रचलित दुष्प्रभावों को समाप्त कर सकती है या उन बातों का निराकरण भी कर सकती है, जो कुछ युवकों को पथभ्रष्ट करने में सहायक हो सकती हैं। आज के समाज में पाँच प्रमुख आवश्यकताएँ हैं जो शाला की प्रवृत्तियों से सीधे (प्रत्यक्ष रूप से) सम्बन्धित हैं :—

(i) यांत्रिक और सामाजिक प्रगति में जो अन्तर पड़ गया है और आज की सामाजिक समस्याओं की जड़ में है, उसे तुरन्त भर दिया जाय।

(ii) हर व्यक्ति को चाहिये वह स्वयं अपने आपसे संतुलित रह सके जिससे कि वह अपनी व्यक्तिगत समस्याओं का सामना कर अपने मानसिक स्वास्थ्य को बना कर रखे।

(iii) व्यक्ति के जीवन के समस्त क्षेत्रों मे जनतांत्रिक सिद्धांतों की सम्भावनाओं एवं आशाओं को पूर्ण किया जाना चाहिए इसमें व्यक्तिगत, राजनैतिक, आध्यात्मिक, आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र सम्मिलित हैं।

(iv) अपने स्थानीय समाज तथा पड़ोस के कार्यों एवं समस्याओं में अधिक सक्रिय तथा रुचिपूर्ण भाग लेना।

(v) विश्व में विभिन्न राष्ट्रों के बीच स्थायी शान्ति, प्रेम, आदर आदि की स्थापना की आवश्यकता पर बल देना।

आर्थिक और व्यावसायिक समस्याओं सम्बन्धी सन्तुलन

आज शालाओं में जो युवक शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं उन्हें भविष्य में एक दिन किसी-न-किसी प्रकार का व्यवसाय या धन्धा (सरकारी या गैर-सरकारी अथवा निजी) करना ही है। अतः इस व्यावसायिक समस्या को सुलझाने के लिए छात्रों को तैयार करने की जिम्मेदारी शिक्षक की है। समस्त छात्रों को किसी-न-किसी व्यवसाय या रोजगार, धन्धे आदि की शिक्षा दी जाय। विद्यार्थी

की सहायता की जाय कि वह स्वयं के व्यक्तित्व को अपनी क्षमता, योग्यताओं तथा रुचियों का ठीक पता लगा सके।

पाठ्यक्रम भी ऐसा बनाया जाय जिसमे देश की आर्थिक व्यवस्था को ध्यान में रखा गया हो। देश के आर्थिक स्रोतो का श्रेष्ठतम उपयोग कर विद्यार्थियों को आत्मनिर्भर बनाने का प्रयत्न किया जाय।

व्यक्तिगत समस्याओं सम्बन्धी सन्तुलन

बालकों को व्यक्तिगत समस्याओं सम्बन्धी जानकारी की आवश्यकता हो सकती है, उदाहरणार्थ—वह आगे कौन से विषय ले जिसमे वह अधिक सफलतर प्राप्त कर सके, वह किस विद्यालय में प्रवेश पाकर अपनी पढाई जारी रखे, वर्त्तमान में ऐसे कौन से व्यवसाय हैं जिनमें अधिक माँग है, उसे पूरा करने के लिये क्या करना चाहिए, उसके जिले में या राज्य में कौन-कौन-सी प्रशिक्षण सुविधाएँ हैं आदि अन्य व्यक्तिगत समस्याएँ हैं जो छात्र से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखती हैं तथा जिसके बारे में छात्र को मार्गदर्शन की अवश्यकता होती है।

पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाएँ

चारित्रिक शिक्षा के लिये पाठ्यक्रम सहगामी प्रवृत्तियाँ अत्यावश्यक हैं। ये प्रवृत्तियाँ व्यक्ति को पूर्ण जीवन और कार्य के लिये आवश्यक अवसर प्रदान करती हैं। विद्यार्थियो का प्रयत्न स्वय प्रेरित होता है अतः वे अपनी योजनाओं के लिए स्वयं जिम्मेदार हैं। इनके द्वारा व्यक्ति व्यावसायिक खोज करता है। विशेष गोष्ठियों में अनुभवों पर विचार-विमर्श होता है। ये भाग लेने, किसी से अपनी बात करने, मान स्वरक्षा के लिए अवसर प्रदान करती हैं। बहुत-सी प्रवृत्तियाँ सामाजिक चातुर्य निर्माण करने में सहायक होती हैं, झर्मीलेपन को दूर करती हैं। शैक्षणिक दृष्टिकोण से प्रखर बुद्धि के विद्यार्थियों के लिये यह प्रवृत्तियाँ नये अवसर प्रदान करती हैं। इन विद्यार्थियो को निर्माणात्मक और बिल्कुल नवीन कार्यों में लगाया जा सकता है। यह विद्यालय की महत्त्वपूर्ण क्रियाएँ हैं और विद्यालय की अपनी स्थिति और साधनो के अनुसार अध्यापकों एवं छात्रों की रुचियों और रुझान के अनुसार ढाला जा सकता है। इनके द्वारा बहुमूल्य गुणों का विकास होता है। स्काउट और गाइड के कार्य अच्छी नागरिकता के लिए आवश्यक हैं। वे बालकों की बहुत-सी शक्तियों की परीक्षा करती हैं तथा समाज सेवा, अच्छा व्यवहार, नेता के प्रति श्रद्धा, राज के प्रति ईमानदारी और संकट स्थिति में हमेशा तैयार रहने की भावना आदि जाग्रत करती हैं। इसी प्रकार एन. सी. सी. द्वारा भी छात्रों में कुछ सैनिक गुण निर्माण

किये जा सकते हैं। प्राथमिक चिकित्सा का समाज सेवा में विशेष स्थान है। दूसरी क्रियाएँ जो बच्चे की योग्यता और स्थानों का निर्माण करती हैं वे भ्रमण, यात्रा, वाद-विवाद, नाटक, संगीत, काव्य और बागवानी हैं। नाटक एवं वाद-विवाद बच्चे को अपनी बात कहने तथा स्पष्ट रूप से सोचने और शब्द भण्डार बढ़ाने मे मदद करते हैं। वे बच्चों की निर्माणकारी और सामाजिक प्रवणता का मार्गान्तरीकरण करती हैं। शारीरिक स्वास्थ्य और स्वस्थ शरीर बनाये रखने के लिए बालकों को स्वास्थ्य की शिक्षा दी जानी चाहिये। शालाओं में सहकारी संस्थाओं तथा भण्डारों की स्थापना की जाकर बालकों को अन्य लोगों के साथ किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए तथा आर्थिक निर्भरता की भावना का निर्माण किया जा सकता है।

पाठ्यक्रम एवं शैक्षिक तथा व्यावसायिक योजना

अपना भारत स्वतन्त्र है। अतः हर व्यक्ति को जनतान्त्रिक नागरिक की जिम्मेदारियों को निभाना आवश्यक है। हमे एक विशाल, धर्मनिरपेक्ष तथा राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपने सामने रखना है क्योंकि हमारा देश गरीब है अतः राष्ट्रीय सम्पत्ति को बढ़ाने हेतु उत्पादन क्षमता बढाना आवश्यक है। हमारी सर्वसाधारण जनता में जो निरक्षरता है उसे दूर कर एक नई संस्कृति का निर्माण करना है। इसलिए विद्यार्थियों के चरित्र को उन्नत कर उनके साहित्यिक, कलात्मक, सांस्कृतिक क्षेत्र में क्षमता लानी है। इसके साथ-साथ हमें छात्रों में व्यावसायिक जगत में (World of Work) आवश्यक योग्यता का भी विकास करना आवश्यक है।

हमें प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तिगत कार्य को भी महत्त्व देना है। उसकी मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, संवेगात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति करनी है। उसे समाज में अनुशासन, सामाजिक जिम्मेदारी, सहिष्णुता के साथ जीवन कैसे बिताया जाय, इस सम्बन्ध में कुशलता की जानकारी देनी है। इसके अतिरिक्त उनमें तकनीकी चातुर्य और सफलता शिक्षा के हर स्तर पर भरी जाय जिससे कि वे भविष्य में देश के औद्योगिक एवं तकनीक के क्षेत्र के विकास के लिये उपलब्ध हो सकें। विद्यालयों में विभिन्न व्यवसाय या उद्योग जैसे खेतादी, लोहार, सुनार आदि अन्य प्राविधिक प्रशिक्षण संस्थाओं में (Industrial Training Institute) उपलब्ध हैं, इन पर अधिक जोर दिया जाना आवश्यक है। इन उद्योगों की सहायता से छात्रों को कार्य सम्बन्धी अनुभव प्राप्त होता है तथा वस्तुओं का निर्माण भी होता है। परिणामतः उन्हें व्यवसाय जगत में किसी

कार्य को करने की कुशलता प्राप्त होती है। स्थानीय रूप से उपलब्ध विभिन्न रोजगार के अवसर तथा आवश्यक योग्यताएँ आदि की जानकारी छात्रों को दी जाय जिससे वे इस दिशा मे सोचें एवं स्वयं को अधिक कार्यक्षम बना सकें।

पाठ्यक्रम के अन्तर्गत वे सब बहुसहयक विषय भी हैं जिनको विद्यार्थी शाला मे सीखता है। पाठ्यक्रम मे अनेकता तथा विविधरूपता होनी चाहिए जिससे व्यक्तिगत भेद के अनुसार हर बालक अपनी रुचि के अनुसार उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं मे विषय ले सके। अन्त में खाली समय या छुट्टी के दिन का समय सही ढंग से रुचि कार्य, खेल-कूद या समाज कार्य आदि के माध्यम से बिताने के लिए प्रशिक्षत किया जाना आवश्यक है। विद्यालयों से सम्बन्धित खेल के मैदान का उपयोग छुट्टियों के दिन किया जा सकता है।

पाठ्यक्रम और व्यक्तिगत विभिन्नता

कोई भी पाठ्यक्रम विद्यालय के समस्त छात्रों के लिए एक समान नहीं होता तथा एक समान होना भी नही चाहिए क्योंकि कोई दो बालक शारीरिक तथा मानसिक दृष्टिकोण से समान नहीं होते। समस्त निर्देशन का मुख्य बिन्दु "व्यक्तिगत विभिन्नता" है यद्यपि एक व्यक्ति को स्वयं में इकाई मानकर मार्ग-दर्शन अपना कार्य करता है। पाठ्यक्रम को भी इस भिन्नता को ध्यान में रखते हुए छात्रों को आगे बढ़ने का प्रोत्साहन देना चाहिए। छात्रों को कक्षा में बाँटते समय बुद्धि लब्धि, विशेष योग्यता, रुचि आदि जानकारी के आधार पर वर्गों में बाँटना होगा। इस समय इसका ज्ञान छात्रों को नही होना चाहिए अन्यथा उनमें आपस में हीनता, द्वेष की भावना हो सकती है। यह वर्गीकरण उच्चतर माध्यमिक कक्षाओ में ही होना चाहिए। उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में पहुंचने तक सभी छात्रों को विभिन्न विषय, पाठ्येत्तर प्रवृत्तियों आदि मे अधिक-से-अधिक भाग लेना चाहिए जिससे उनके बुद्धि, रुचि आदि का पूर्ण विकास हो सके। इनके विकास के लिए योग्य अवसर उपलब्ध कराना शिक्षक का ही मुख्य कार्य है। पाठ्यक्रम सब छात्रों एवं सब श्रेणियों के लिए होना चाहिए।

पिछड़े हुए बालकों, समस्यात्मक बालकों तथा अपराधी बालकों संबंधी निर्देशन

पिछड़े हुए बालक का वर्गीकरण उसके बौद्धिक स्तर के आधार पर किया हुआ है, समस्यात्मक बालक तथा अपराधी बालक का उसके व्यवहार के आधार पर किया है। ये बालक मानसिक दृष्टिकोण से बुद्धि हीन, साधारण अथवा प्रतिभाशाली हो सकते हैं।

पिछड़े हुए बालक

पिछड़ापन क्या है? बर्ट के अनुसार "जो बालक अपने अध्ययन के मध्य-काल में (१०½ के निकट) अपनी कक्षा का कार्य जो उसकी आयु के लिए सामान्य है, करने में असमर्थ है उसे पिछड़ा बालक कहते हैं। वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण से देखने पर प्रमापीकृत परीक्षाओं के आधार पर पिछड़े बालकों को पहिचाना जा सकता है। किन्तु वर्तमान स्थिति में जहाँ पर हर विद्यालयों में प्रमापीकृत परीक्षाएँ उपलब्ध नहीं है शिक्षक का निरीक्षण सहायक हो सकता है।"

पिछड़ेपन के कारण :—पिछड़ापन एक व्यक्तिगत समस्या है। अतः इसके कारणों को हम व्यक्तिगत रूप से ही ढूढ़ सकते हैं। यद्यपि अध्यापक या परामर्शक को सर्वसामान्य कारणों के सम्बन्ध में जानकारी होनी चाहिए :—

(१) सामान्य सहज बुद्धि की कमी :—यह एक मुख्य कारण है। भारत में जहाँ निरक्षरता, गरीबी आदि है वहाँ की पाठशालाओं में पिछड़े बालकों की संख्या उपयुक्त संख्या से कहीं अधिक होगी। सामान्य सहज बुद्धि का पता लगाने के लिए बुद्धि-परीक्षा लेना आवश्यक है।

(२) वातावरण का प्रभाव :—दूषित वातावरण का बालक पर बुरा प्रभाव पड़ता है। दूषित वातावरण मे बालको का शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। यदि बालक के माता-पिता गरीब हैं तो वे बालक के लिए आवश्यक किताबें आदि पढाई सम्बन्धी सामग्री नही खरीद सकते। इसके अलावा उन्हें बहुधा घर का भी काम करना पड़ता है जिसके कारण उन्हे अपने पाठ को याद करने के लिए पर्याप्त समय नहीं मिलता।

यदि बालक के माता-पिता उसे प्यार न करें या अधिक प्यार करें तो संवेगात्मक समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। परिणामतः पढ़ने से उसका ध्यान हट जाता है और उसके पिछड़े बालक बन जाने की सम्भावना है।

पाठशाला में अध्यापक द्वारा कठोर व्यवहार, अन्य सहपाठी द्वारा तिरस्कार आदि कारणों से बालक का पिछड़ जाना सम्भव हो सकता है। कभी-कभी मन्द बुद्धि के साथ दूषित वातारण का होना पिछड़ेपन को अधिक बढ़ावा देता है।

(३) शारीरिक दोष :—यदि बालक कम सुनता है या उसकी आँखें कमजोर हैं या वह हकलाता है तो भी वह पिछड़ जाता है।

(४) कक्षा से भाग जाना :—जो बालक कक्षा में पढाये गये पाठ की ओर ध्यान नही देते और बहुधा कक्षा से भाग जाते हैं या आधी छुट्टी समाप्त होने पर कक्षा में नहीं आते वे बालक, कक्षा में पढ़ाये जाने वाली विषय की मुख्य बातें नही सीख पाते और उन विषयों में वे पिछड़ जाते हैं। जैसे जब कक्षा में 'वर्गमूल' निकालना सिखाया जाता है और बालक किसी कारण अनुपस्थित है तो आगे वर्गमूल के सम्बन्ध में सवाल करने पड़ते हैं तब वह गलती कर देता है और परिणामतः वह गणित विषय में पिछड जाता है।

(५) विशिष्ट पिछड़ेपन के कारण :—किसी एक विषय में पिछडेपन का कारण उस विषय से सम्बन्धित विशेष योग्यता की दुर्बलता भी हो सकती है जैसे शाब्दिक (Verbal) योग्यता या "संख्यात्मक" (Numerical) योग्यता की कमी। इसका यही पता लगाने के लिए हमे विशेषज्ञ द्वारा मनोवैज्ञानिक परीक्षण करवाना चाहिए।

पिछड़ेपन का उपचार

पिछड़ेपन के दो प्रकार हैं :—(१) सामान्य और (२) विशिष्ट।

(१) सामान्य पिछड़ापन तथा उसका उपचार :—सामान्य पिछड़ेपन का अर्थ है कक्षा में पढ़ाये जाने वाले सभी विषय मे औसत बालक की अपेक्षा

पिछड़ापन। कभी-कभी वह कुछ विषयों में पढ़ने में दूसरों से अच्छा हो सकता है किन्तु औसत स्तर के छात्रों की अपेक्षा वह हमेशा पिछड़ा रहता है। इसे दूर करने के लिए निम्नलिखित उपचार ध्यान देने योग्य है :—

(१) शारीरिक दोष को ढूंढ़ कर उसे दूर करना :—बालक को किसी चिकित्सक के पास भेजकर शारीरिक दोष सम्बन्धी पता लगाना चाहिए। यदि कोई दोष हो तो उसका उपचार करवाना चाहिए।

(२) बुद्धि परीक्षा द्वारा मन्द बुद्धि का पता लगाना :—मन्द बुद्धि वाले बालक सामान्य से हमेशा पिछड़े ही रहेंगे। प्राविधिक दृष्टि से मन्द बुद्धि व्यक्ति की बुद्धि लब्धि ७५ से कम होती है तथा मन्द छात्र की ७५ और ९० के बीच। ऐसे बालकों का ध्यान और रुचि विस्तृत रूप में नही होती और उससे एकाग्रचित्त होने मे कठिनाई होती है। वह शैक्षणिक तथा सामाजिक कार्यों में समान रूप से भाग नही लेता; सरलता से भ्रमित हो जाता है। गम्भीरता से सोच नही सकता, स्वतन्त्रता से निर्देशों का पालन नही कर सकता है।

कोई भी अभिभावक यह स्वीकार करना नही चाहता कि उसका बच्चा मन्द बुद्धि है, अध्यापक भी हमेशा तीव्र बुद्धि वाले बालकों को पढ़ाना चाहते हैं, ऐसी अवस्था में कक्षा में या तो अन्य बालक उसे अस्वीकार करते हैं या उसे चिढ़ाते हैं। यदि उसे चारों तरफ से स्वीकार किया जाय तो वह स्नेह प्रदर्शित करता है एवं सबके साथ सहयोग करता है। यदि वह यह अनुभव करता है कि उसकी उपेक्षा की जा रही है अथवा वह अपने सहपाठियों के साथ नही चल पा रहा है तो उसके मन में निराशा की भावना उत्पन्न होती है। यदि वह शारीरिक दृष्टि से बलवान है तो वह किसी भी व्यक्ति से झगड़ा कर लेता है।

सम्भवतया घर पर वह मिल-जुलकर और सहायक बनकर रहता है अतः वह पढ़ने मे कमजोर है तथा स्कूल में असहयोगपूर्ण है ऐसी सूचना अभिभावकों को मिलने पर वे आश्चर्य करने लगते हैं। किन्तु जब उसके माता-पिता उसकी तुलना उसके बुद्धिमान अन्य भाई बहनों से करते हैं तब वह क्षुब्ध हो जाता है। या तो वह अपने आप में सिकुड़ कर रह जाता है या परिवार के अन्य बच्चों से झगड़ा करने लगता है। कक्षा में पढ़ने में मन्द छात्र अपने कुशल बुद्धि वाले सहपाठियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करता है। वह उन्हें अपनी बहुमूल्य वस्तुएँ देकर उनकी मित्रता प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, कभी-कभी इन वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए उसे बेईमानी करने

या अनुचित कार्यों द्वारा पैसा प्राप्त करना पड़ता है। वह ऐसे खेल खेलता है जिसमें नियम तो थोड़े हों किन्तु दौड़-धूप या उछल-कूद खूब करनी पड़ती है। नृत्य करना भी पसन्द करता है। वह सिनेमा बड़ी रुचि से देखता है। यहाँ भी वह उछल-कूद चाहता है। गम्भीर मुद्रा या वार्त्तालापयुक्त चित्र उसे पसन्द नहीं आते। शान्त मनोरंजक कार्यों से वह ऊब जाता है। सम्भव है कि यौवन काल में उसमें लैंगिक भावना जाग्रत हो जाय और वह असामान्य लैंगिक प्रवृत्तियों में भाग ले।

दैनिक किन्तु सन्तोषप्रद कार्यों में भाग लेने से जब तक उसकी सरल इच्छाएँ तथा अभिरुचियाँ सन्तुष्ट होती रहती हैं तब तक वह प्रसन्न तथा आनन्दमय रहता है और अपनी पहुँच के बाहर के लक्ष्य प्राप्त करने की चिन्ता नहीं करता।

उपरोक्त लक्षण कुछ मात्रा में पाया जाता है तथा इसमें भी व्यक्तिगत भिन्नताएँ दिखाई देती हैं।

यदि बालक मन्द बुद्धि है तो उसका उपचार बहुत कठिन है। उसे विशेष संस्था में भर्ती करना आवश्यक है जहाँ पर उसकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए और सरल कार्यों में प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है। अभिभावकों को इस सम्बन्ध में जाग्रत करने के लिये 'साक्षात्कार' भी करना पड़ता है।

(३) वातावरण के कारण पिछड़ापन हो तो वातावरण में सुधार : (अ) ऐसी स्थिति में बालकों की रुचि का पता लगा कर उसके अनुसार कार्य को करने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए। (ब) उनकी शिक्षा क्रियात्मक आधार पर होनी चाहिए। उन्हें प्रतिरूप (Models) दिखाना चाहिए। नाटक आदि द्वारा उन्हें विभिन्न पात्रों के सम्बन्ध में जानकारी करवाना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य श्रव्य-दृश्य सहायकों (Audio Visual Aids) द्वारा जैसे चल-चित्र, चित्र, फिल्म स्ट्रिप, पोस्टर, चार्ट आदि की सहायता से उनके ध्यान को पाठ्य-क्रम की ओर आकर्षित करना चाहिए। (स) उनकी पुस्तकों के अभाव को दूर करना चाहिए जैसे विद्यालय फण्ड की मदद से या धनवान छात्रों की सहायता से। (द) माता-पिता से साक्षात्कार कर उन्हें समझाना चाहिए कि बालकों को घरेलू कामों में अधिक नहीं लगाना चाहिए। (य) कक्षा से भागने या अनुपस्थिति को रोकने के लिए व्यक्तिगत साक्षात्कार की आवश्यकता है।

(४) विशिष्ट पिछड़ापन तथा कुछ उपचार : जब बालक किसी एक विषय में पिछड़ जाता है तब उसे विशिष्ट पिछड़ापन कहते हैं। कभी-कभी अध्यापक

की छात्रों को पढ़ाने की दोषपूर्ण विधि या अध्यापक की कठोरता तथा अमनोवैज्ञानिक व्यवहार आदि कारणों से यह पिछड़ापन दिखाई देता है, उदाहरण के तौर पर गृह कार्य अधिक होने पर गणित के सवाल जब छात्र नहीं करता तब उसे अध्यापक डण्डे से पीटता है। ऐसी स्थिति में भय के कारण छात्र गणित में रुचि नहीं लेता एवं पिछड़ जाता है।

परामर्शद को या अध्यापक को निम्नलिखित विधियाँ उपयोग में लानी चाहिएँ :—

(१) यदि शारीरिक दोष हो तो उसे चिकित्सक के पास भेजकर उसका उपचार करवाया जाये।

(२) कक्षा अध्यापन में ऐसी विधियों का उपयोग किया जाय जिससे वह रुचि ले सके।

(३) जिस विषय में बालक पिछड़ा हुआ है उस विषय-सम्बन्धी सहायक सामग्री की पूर्ण सहायता दी जानी चाहिए।

(४) व्यक्तिगत ध्यान दिया जावे।

(५) जहाँ पर कोई पाठ छात्र के समझ में न आये, वहाँ शिक्षक को रुककर पाठ को समझाना चाहिए। इसके अतिरिक्त कक्षा के बाद भी किसी छात्र को कोई कठिनाई हो तो वह पूछ सकता है, इस प्रकार का विश्वास दिलाना आवश्यक है।

समस्यात्मक बालक

वैलनटीन के अनुसार "समस्यात्मक बालक वे बालक कहलाते हैं जिनका व्यवहार या व्यक्तित्व गम्भीर रूप से असाधारण होता है"। समस्यात्मक व्यवहार के उदाहरण हैं—कक्षा से भाग जाना, चोरी करना, अनुशासन के प्रति विरोध, क्रोधित होना, घबराना, स्नायविक दुर्बलता आदि।

यहाँ पर ध्यान रखना चाहिए कि समस्यात्मक बालक कोई विशेष वर्ग नहीं है। एक प्रकार से सब बालक एक रूप में या दूसरे में अधिक या कम मात्रा में समस्यात्मक होते ही हैं। प्रत्येक बालक स्नायविक साधारण कभी नहीं होगा। बहुधा समस्यात्मक बालकों को विशेषज्ञों के पास भेजना आवश्यक है। यद्यपि कुछ सीमा तक अध्यापक या अभिभावक भी उपचार कर सकते हैं।

समस्यात्मक व्यवहार क्या है ?

कौन-सा व्यवहार समस्यात्मक अथवा कौन-सा नहीं यह कहना अति कठिन कार्य है। उदाहरणार्थ ३ से ५ साल की आयु में जब उसका व्यवहार जिद्दी

तथा नटखटी होता है वह आगे चलकर सन्तोषजनक व्यवहार बनता है।

विभिन्न अनुसन्धान-कर्त्ताओं द्वारा तथ्यों के आधार पर हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि हम उन व्यवहारों को ही समस्यात्मक समझें जो बालक के अनुकूलन या व्यवस्थापन में बाधक हैं और जो विशेषज्ञों के अनुसार गम्भीर रूप धारण कर सकते हैं। अध्यापकों को चाहिए कि छात्रों द्वारा खड़ी की गई समस्याओं को वे समस्यात्मक छात्र न समझें, किन्तु जिन छात्रों का अनुकूलन गम्भीर रूप से बिगड़ा हुआ है और जो संवेगात्मक भार से पीड़ित हो उन्हें ही समस्यात्मक समझें।

मुख्य प्रकार के समस्यात्मक बालक

बर्ट समस्यात्मक बालकों को दो मुख्य भागों में बाँटता है: (१) झगड़ालू और उत्तेजना युक्त, (२) अवदमित (Repressed) या हतोत्साहित। यह दो मुख्य प्रकार कई प्रकार के व्यवहारों में दिखाई देते हैं जैसे (१) झगड़ालू का व्यवहार क्रोधमय या अनुशासनहीनता की ओर तथा (२) दमित व्यवहार में भय और आज्ञाकारिता मुख्य है। किस प्रकार के व्यवहार को बालक अपनाएँगे यह अधिकतर वातावरण पर निर्भर करता है।

समस्यात्मक बालकों के निदान की आवश्यकता

आज जो बालक समस्यात्मक है वह आगे चलकर गन्दा व्यवहार करने वाले युवकों में बदल जाते हैं। अतः यदि युवकों के व्यवस्थापन को अच्छा रूप देना है तो बालकों के व्यवहार आदि में सुधार होना चाहिए। समस्यात्मक बालक पाठशाला में, खेल के मैदान में तथा घर में समस्याएँ खड़ी कर देते हैं। यही स्थिति युवक अवस्था में भी रहती है और परिणामतः व्यक्ति मानसिक रोग से ग्रसित हो जाता है। वे स्वयं दुःखी होते हैं तथा समाज पर बोझ के रूप में रहते हैं। अतः उनके निदान की आवश्यकता है।

समस्यात्मक बालकों की पहचान सरल नहीं है। बहुधा उनके व्यवहार के कारण उनके गुप्त चेतन के स्तरों में छिपे रहते हैं जिनको ढूँढकर समझना एक विशेषज्ञ या मनोवैज्ञानिक का कार्य है। यद्यपि उनके अव्यवस्थित व्यवहार के कुछ मुख्य कारणों को समझ लेना आवश्यक है ताकि उपचार किया जा सके।

अव्यवस्थित व्यवहार के मुख्य कारण

व्यक्ति के अव्यवस्थापन में वंशानुक्रम तथा वातावरण दोनों का महत्वपूर्ण हाथ है। प्रत्येक बालक जन्म के समय निश्चित प्रकार की शक्तियाँ लेकर आता

है। उसकी बहुत-सी विशेषताएँ उनके माँ-बाप के पित्रैकों के मिश्रण के आधा पर होती हैं। किन्तु मूल व्यवहार पर वातावरण का प्रभाव पड़ता है। किसं भी समस्यात्मक बालक में निम्नलिखित में से एक या दो या तीनों कारण तः साथ पाये जा सकते हैं :

(अ) बालक में *शारीरिक, संवेगात्मक या स्नायविक दोष*—बालक क शारीरिक विकास निम्न हो अथवा आयु में अधिक हो, वह कमजोर दिल क हो, या उसकी वाणी दूषित हो, या बीमार हो आदि।

(ब) बालक का स्वभाव संवेगात्मक दशाओं से सम्बन्धित होता है। कुछ बालकों में जन्मजात सुसंगठित संवेगात्मकता होती है और कुछ में नहीं।

(स) सामाजिक या वातावरण से सम्बन्धित—इसमें घर या पाठशाला का वातावरण जब दूषित होता है तब समस्यात्मक व्यवहार दृष्टिगोचर होते हैं।

पहले दो कारणों के सम्बन्ध में अधिक सहायता नहीं दी जा सकती किन्तु वातावरण को कम दूषित करने की दृष्टि से सहायता प्रदान की जा सकती है। *इनका विस्तृत विवरण निम्नलिखित है :—*

(१) **घर का वातावरण** :—यदि घर पर बालक की ओर ध्यान न दिया जावे या अधिक लाड़-प्यार से पाला जावे तो वह आगे चलकर निश्चित रूप से समस्यात्मक हो जाता है। परिवार में माता-पिता का आपस में झगड़ा, अन्य सदस्यों में एक-दूसरे के साथ नीचता का व्यवहार आदि कारणों से भी बालक समस्यात्मक हो जाता है। घर के वातावरण में निम्नलिखित बातें आती हैं :

(i) परिवार में केवल एक कमरा होना तथा दो भाई-बहन से अधिक सदस्य रहना। ऐसी स्थिति में किसी कार्य की गोपनीयता नहीं रहती। इसका परिणाम बालकों के मन पर पड़ता है।

(ii) परिवार में बालक का इकलौता होने के कारण अधिक लाड़-प्यार करना। हर बात बालक के लिए माता-पिता स्वयं करते हैं अतः बालक में स्वयं मिल-जुलकर कार्य करना आदि गुणों का अभाव होता है।

(iii) परिवार में सौतेली मां होना तथा उसका बालक के प्रति क्रूरता का व्यवहार।

(iv) माता-पिता की बहुत उच्च आशाएँ बालकों से रखना।

(v) कभी-कभी माँ-बाप अपने सबसे बड़े लड़के को अधिक प्यार नहीं देते जैसा वह छोटे बच्चों को देते हैं। जब यह बात बड़े लड़के अनुभव करते हैं तब वे समस्यात्मक बालक हो सकते हैं।

(vi) परिवार की आर्थिक स्थिति कमजोर होने पर घर में किसी प्रकार की सुविधाएँ नहीं होती और माता-पिता स्वयं परिवार की ओर अधिक ध्यान नहीं दे पाते।

(vii) परिवार में दोनों ही माता-पिता का नौकरी हेतु बाहर रहना। ऐसी स्थिति में वे अपने बालकों की देख-रेख उचित प्रकार से नहीं कर सकते।

(२) घर का अनुशासन :—बहुधा समस्यात्मक बालक घर के अनुशासन के कारण भी बन जाते हैं। घर का वातावरण अत्यन्त कड़ा या अत्यन्त नरम होने पर भी बालक के बिगड़ने की सम्भावना है। कई परिवारों के पिता बहुत कठोर होते हैं और माताएँ बहुत उदार, ऐसी स्थिति में बालक एक-दूसरे को विपरीत समझने लगता है और एक-दूसरे के विरुद्ध भड़काने का प्रयत्न करता है। कभी-कभी वह कठोर अनुशासन के विरुद्ध उपद्रव भी खड़ा कर सकता है।

बालक के व्यवहार को समस्यात्मक बनने से रोकने के लिए निम्नलिखित बातों को घर में अनुशासित करना चाहिए :—

(१) परिवार में अनुशासन अवश्य होना चाहिए किन्तु अनुशासन दबाव के रूप में नहीं बल्कि आत्म-नियन्त्रण के रूप में होना चाहिए। बालक अपने विकास की अवस्था के अनुसार कुछ व्यवहार करता है तो उसे समस्यात्मक नहीं मानना चाहिए तथा कठोरता से व्यवहार नहीं करना चाहिए।

(२) छात्रों के साथ साक्षात्कार के समय घर के वातावरण सम्बन्धी तथ्य सामने आने पर परामर्शक को चाहिए कि वह माता-पिता से भी साक्षात्कार करे एवं दूषित वातावरण को दूर करने के लिए सहायता प्रदान करे।

(३) हर परिवार की वास्तविकता सामने रखते हुए अपनी इच्छा, आकांक्षा, आशा आदि का स्तर अपने बच्चों के सामने रखें तथा उसके अनुसार उनके व्यवहार की ओर देखें।

(४) पाठशाला तथा घर में सहयोग चाहिए अतः हर विद्यालय में 'शिक्षक अभिभावक संघ' की स्थापना कर उसे अधिक प्रभावशाली बनाने हेतु सहायता प्रदान करना परामर्शक का कार्य है।

(५) कभी-कभी पाठशालाओं में शारीरिक दण्ड की आवश्यकता हो सकती है।

बाल अपराध

हेडफिल्ड के अनुसार बाल अपराध की परिभाषा 'समाज विरोधी व्यवहार'

दी जा सकती है। बालक समाज की सुविधाओं का उपयोग तो करता ही किन्तु समाजहित में व्यवहार नहीं करता उसे हम 'बाल अपराधी' कहते है जिन बालकों का सामाजिक व्यवहार इतना गम्भीर रूप धारण कर लेता कि देश के नियमों के अनुसार दण्ड देना आवश्यक है उन्हें बालापराधी क हैं। कुछ बालक चोरी करते हैं तथा मार-पीट करते हैं। कुछ डकैती से लेक खून तक करते हैं। यह बालापराध के उदाहरण हैं। यह अपराध अनैतिक स्त पर होता है। बहुधा उसने सही तथा गलत का अर्थ नहीं सीखा होता है।

बाल अपराध के कारण

यह कारण दो प्रकार के हैं :—(१) व्यक्तिगत और (२) सामाजिक अथव वातावरण सम्बन्धी।

(१) व्यक्तिगत कारण

(अ) शारीरिक दोष :—बालक में शारीरिक दोष होने पर वह अपने कुछ कमी की बात सोचने लगता है। यदि उसके शारीरिक दोष पर व्यंग किय जाय तो सम्भवतः वह समाज विरोधी व्यवहार अपना ले क्योंकि समाज वे विरुद्ध एक प्रतिक्रिया का विकास हो जायेगा। वह चाहेगा कि समाज को तोड़-फोड़ कर नष्ट करे।

(२) जब बालक का विकास उसी आयु के अन्य बालकों की तुलना में तीव्र या मन्द गति से चलता है तो वह अपना व्यवस्थापन करने में कठिनाइयाँ अनुभव करता है। वह असन्तोष के कारण समाज विरोधी व्यवहार करने लगता है।

(३) मन्द बुद्धि के बालक मे उच्च सामाजिक व्यवहार क्या है इसका निर्णय करने की शक्ति नही होती अतः वह अनैतिक व्यवहार की ओर सरलता से तथा शीघ्रता से खीचा जा सकता है।

(२) सामाजिक वातावरण सम्बन्धी

घर का दूषित वातावरण

(१) घर मे सौतेली माता या पिता का होना।
(२) माता-पिता में आपस मे झगड़ा।
(३) माता-पिता का बालक के प्रति कम प्यार या अधिक प्यार।
(४) अत्यन्त गरीबी के कारण मूल आवश्यकताओं की पूर्ति न होना।

(५) माता-पिता की बालक के प्रति उच्च आकांक्षा ।

(६) परिवार के अन्य सदस्यों में झगड़ा ।

(७) कुटुम्ब के अन्य सदस्यों की तुलना में एक बालक की अधिक प्रशंसा करना तथा दूसरे बालक की बुराई करना, परिणामत: वह आत्म-हीनता का अनुभव करता है और अनैतिक व्यवहार की ओर झुकता है ।

(८) घर में दूषित अनुशासन होना : अत्यन्त सरल या कठिन ।

(९) माता-पिता का शराबी या जुआरी होना ।

(१०) माता-पिता में काम सम्बन्धी दोषों का होना ।

(११) माता-पिता का स्वयं का मानसिक असंतुलन ।

(१२) माता-पिता का तलाक देना ।

(१३) माता का नौकरी करना जिससे बालक की देखभाल में कमी होना ।

(ब) घर के बाहर का वातावरण

(१) घर में चारों ओर दूषित वातावरण जैसे—वैश्यालय या जुआघर या शराब की दुकानें आदि ।

(२) बहुत अधिक चल-चित्र देखना जिससे काम संबंधी उत्तेजना मिलती है ।

(३) बाल अपराधी मित्रों के साथ दोस्ती । वह अन्य मित्रों के अनैतिक व्यवहार का अनुकरण करने लगता है ।

(४) छोटे बालकों का फैक्टरी में या अन्य धन्धों में कार्य करना । ऐसे बालक आरम्भ से ही बीड़ी-सिगरेट पीना, चलचित्र देखना या शराब पीना आदि व्यवहार करने लग जाते हैं ।

(५) पाठशाला में अध्यापकों का अनुचित व्यवहार ।

(६) शिक्षा-विधि तथा शिक्षा साधनों का अरोचक होना ।

(७) पाठशाला में अत्यन्त कड़ा या ढीला-ढाला अनुशासन होना ।

(८) उचित मनोरंजन के साधनों का अभाव, खेल के मैदान आदि न होना ।

बाल अपराधी तथा समस्यात्मक बालकों का उपचार और रोकने के उपाय

(अ) बाल अपराधीपन को रोकने के उपाय :—अभिभावकों द्वारा उपयोग में लाये जाने वाले उपाय निम्नलिखित हैं :—

(१) घर में उचित वातावरण बनाना । अभिभावकों को बालक के सामने लड़ना तथा झगड़ना नहीं चाहिए ।

(२) बालकों के प्रति उचित व्यवहार रखना। उनका बालकों के
सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार होना चाहिए। अधिक लाड़-प्यार या अ
कठोर व्यवहार को रोकना चाहिए।

(३) बालकों की बुरी आदतों के प्रति उचित दृष्टिकोण रखना—माता-पि
को बालकों के साथ व्यवहार में अपना धैर्य कभी नहीं खोना चा
और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार द्वारा बुरी आदतों को दूर करने
प्रयत्न करना चाहिए।

(४) माता-पिता को बाल मार्गदर्शन का ज्ञान होना चाहिए: बालक
विकास की कौन-सी अवस्थाएँ हैं तथा किस अवस्था में उसकी क
विशेषताएँ हैं इसका ज्ञान माता-पिता को होना चाहिए जिससे
बालक के व्यवहार के सम्बन्ध में निर्णय ले सकें। उन्हें इस सम्ब
में पुस्तकें या मासिक पत्र आदि सामग्री पढ़ना चाहिए।

(५) माता-पिता को परिवार नियोजन की विधियों से परिचित होन
चाहिए। बालकों की ओर उचित ध्यान देने हेतु तथा दैनिक आव
श्यकताओं की पूर्ति हेतु परिवार में हमेशा मर्यादित सदस्य हों
चाहिएँ। अतः परिवार की वृद्धि पर नियन्त्रण रखना आवश्यक है।

(६) बालकों को बहुत अधिक जेब खर्च नहीं देना चाहिए। अधिक जेब
खर्च देने से अधिक चलचित्र देखना, धूम्रपान आदि दूषित आदतों को
अपनाने की सम्भावना है। जेब खर्च हमेशा मर्यादित देना चाहिए।

(७) माता-पिता को बालकों के प्रति अधिक सुरक्षा नहीं दिखानी चाहिए,
अधिक सुरक्षा के वातावरण में वे स्वयं सीखने-समझने में बेकार हो
जाते हैं। परिणामतः वे बुरे मित्रों के प्रलोभन में शीघ्र फँस जाते हैं।

(८) माता-पिता को अपने बालकों के बुरे मित्रों के बारे में जानकारी
होनी चाहिए—इसके लिए बालकों के मित्रों को घर पर बुलाना तथा
उनके घर के वातावरण सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करना आवश्यक
है। यदि मित्र अच्छे प्रतीत नहीं हों तो उनका साथ छोड़ने के लिए
बालकों को समझाना चाहिए।

(९) माता-पिता को बालकों की शिक्षा की ओर ध्यान देना चाहिए। वे
कितने ही व्यस्त क्यों न हों किन्तु विद्यालय में उनकी कैसी पढ़ाई हो
रही है इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है।

(ब) पाठशाला द्वारा उपयोग में लाये जाने वाले उपाय

बालक के जीवन का अधिकांश समय पाठशाला मे खर्च होता है। बालक का आचरण अच्छा बनता है या बुरा इसका सर्वाधिक उत्तरदायित्व पाठशाला का है। पाठशाला मे निम्नलिखित उपाय उपयोग में लाये जा सकते हैं :—

(१) पाठशाला मे चरित्रवान तथा बाल मनोविज्ञान से परिचित अध्यापकों का होना। बालको की आवश्यकता तथा रुचि क्या है इसकी जानकारी मनोविज्ञान से मिलती है।

(२) पाठशाला मे प्रत्येक बालक को उसकी रुचि तथा योग्यता के अनुसार शिक्षा देनी चाहिए।

(३) अध्यापकों को कक्षा मे पढ़ाते समय आत्मविश्वास रखना चाहिए और पाठ को रुचिपूर्ण बनाना चाहिए।

(४) विद्यार्थियों को पढ़ने की उचित सामग्री मिलनी चाहिए तथा उनमे पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त अन्य पुस्तको के पढ़ने की रुचि उत्पन्न करनी चाहिए। इसके लिए पाठशाला मे अच्छा पुस्तकालय तथा अच्छा अध्ययन-कक्ष होना चाहिए ताकि छात्र खाली समय में वहाँ जाकर पढ़ सकें। आकर्षक पुस्तकें, पत्रिकाएँ आदि पुस्तकालय में मिलनी चाहिएँ।

(५) पाठशाला मे बालको के स्वस्थ मनोरंजन के साधन होने चाहिएँ। विद्यालय मे खेल का अच्छा मैदान तथा खेल की पर्याप्त सामग्री, रेडियो आदि होना चाहिए।

(६) कक्षा मे शिक्षण के लिए अध्यापको को अच्छी पद्धति अपनानी चाहिए जिससे वह पढ़ाई मे रुचि ले सकें।

(७) घर तथा विद्यालय में समन्वय स्थापित करना चाहिए। छात्रो की जो कुछ भी समस्याएँ हैं उन्हें उनके माता-पिता के सामने रखना चाहिए व उन्हें बालकों के प्रति उचित व्यवहार करने के लिए कहना चाहिए। शिक्षक-अभिभावक संघ इस कार्य में अधिक मदद कर सकते हैं।

(८) बालकों के उचित मार्गदर्शन देने की व्यवस्था करनी चाहिए। इसके लिए प्रत्येक विद्यालय मे प्रशिक्षित परामर्शक का होना आवश्यक है। प्रशिक्षित परामर्शक के अभाव में कम-से-कम विद्यालयों में ऐसा प्रशिक्षित अध्यापक होना चाहिए जिसने प्रशिक्षण की अवधि में मार्ग दर्शन के क्षेत्र में विशेष प्रशिक्षण लिया हो।

८

विशिष्ट बालकों का निर्देशन

किसी भी विद्यालय में शारीरिक, सामाजिक तथा मानसिक विकास में विशिष्ट बालक अवश्य देखने को मिलेंगे। विद्यालय के दृष्टिकोण से विशिष्ट अथवा अपवादस्वरूप बच्चा वह होता है जो सामान्य बच्चों की अपेक्षा शारीरिक, मानसिक, शैक्षिक या सामाजिक स्थिति में इतना पृथक् हो कि वह औसत सामूहिक स्थितियों में अध्ययन से कोई लाभ न ले सके। ऐसे छात्रों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है —

(१) शारीरिक न्यूनता से ग्रसित।

(अ) अपंग

(आ) सम्पूर्ण और अर्द्ध अन्धे

(इ) पूर्ण बधिर और अपूर्ण बधिर

(ई) हकलाने या दोषयुक्त वाणी वाले

(उ) निर्बल या कोमल।

(२) मानसिक न्यूनता से ग्रसित

(३) प्रतिभासम्पन्न।

कार के विचार हमेशा मन मे उठने के कारण परिणामतः उसके अन्दर हमदैन्य की भावना उत्पन्न हो जाती है। शारीरिक ग्रसित आवश्यक रूप से नसिक दोषयुक्त नहीं होते। अधिकतर देखा गया है कि इस प्रकार के व्यक्ति साधारण या उच्च प्रकार की बुद्धि होती है। अतः उनकी शारीरिक कमी दूर करने के लिये उनकी बुद्धि का पूरा-पूरा विकास करने में सहायता देनी हिए।

(अ) अपंग :—यह व्यक्ति या तो (i) जन्म के समय से दोषयुक्त होते हैं (ii) दुर्घटना में उनका कोई अंग नष्ट होता है या (iii) किसी बीमारी के ाव के कारण दोषयुक्त होते हैं। इससे उस व्यक्ति की शारीरिक गतिविधियाँ मेत तो हो सकती हैं किन्तु उसमें मानसिक योग्यता या तो साधारण होती अथवा तीव्र होती है। इनके लिये मार्गदर्शन इस प्रकार प्रदान किया ाा है :—

(१) उनके मानसिक विकास के लिए पूर्ण अवसर देना चाहिए।

(२) पाठशाला में सामग्री होनी चाहिए। उनके लिये विशेष प्रकार की कुर्सी आदि जिससे वे आराम से बैठ सकें और बिना अपने शरीर पर जोर पढ़ने और लिखने का कार्य कर सकें।

(३) शारीरिक ग्रसितता मे बाधा न डालने वाली व्यावसायिक शिक्षा देनी ए। उदाहरणार्थ—वह किसी गाड़ी के इंजिन में कोयला डालने वाला र नही बन सकता किन्तु किसी जगह आराम से बैठकर कोई उद्योग या ाय कर सकता है एवं उसमें सफलता प्राप्त कर सकता है।

(४) शारीरिक गतिविधियों में जब ये भाग नहीं ले पाते जिनमें उनके भाग लेते हैं तो वे उदासी और निराशा अनुभव करते हैं। वे अपनी अस- ा पर क्षुब्ध हो जाते हैं। ऐसी अवस्था मे अभिभावक या विद्यालय के अन्य को चाहिए कि वे उन्हें अपने दोष को स्वीकार करने तथा उपयुक्त कार्यों तोषजनक सफलता प्राप्त करने में सहायता प्रदान करें। इस प्रकार वे साथियों से सम्मान तथा उनकी मित्रता प्राप्त करेंगे।

(आ) सम्पूर्ण अन्धे अथवा अर्द्ध अन्धे :—अध्यापक को यह जानने का करना चाहिए कि किसी बालक में नेत्र सम्बन्धी दोष तो नहीं है। जब यह इस प्रकार के दोष देखे जैसे—पढ़ते समय अधिक झुकना, विशेष से पुस्तक को पढ़ना, क्रोधित होना, आँखों को बार-बार मलना, सर तथा का विशेष स्थिति मे होना आदि तो उसे मालूम करने का प्रयत्न करना

चाहिए। ऐसे व्यक्ति के मार्गदर्शन के लिये निम्नलिखित बातों की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए :—

(१) नेत्र दोष देखने पर अच्छा हो उसे किसी चिकित्सक के पास भेजकर परीक्षा कराई जाय।

(२) यदि छात्र सम्पूर्ण अन्धा हो तो उसे तुरन्त सम्पूर्ण अन्धों के विद्यालयों में भेजने हेतु अभिभावकों की मदद करनी चाहिए। ऐसी संस्थाओं का पूर्ण पता तथा सम्बन्धित जानकारी मार्गदर्शक के पास होनी चाहिए।

(३) दूषित वातावरण के कारण भी यह दोष उत्पन्न हो सकता है। इसके लिए :—

(अ) स्कूल में रोशनी का उचित तथा पूर्ण प्रबन्ध होना चाहिए।

(ब) घर में भी पढ़ते समय रोशनी पर्याप्त होनी चाहिए।

(स) स्कूल मे श्यामपट हमेशा स्वच्छ होना चाहिए तथा लिखी जाने वाली सामग्री स्पष्ट होनी चाहिए।

(६) पूर्ण बधिर अथवा अपूर्ण बधिर :—पूर्ण बधिर वह व्यक्ति है जिसने कभी कोई चीज सुनी न हो। उसने अपने बोलने से पहले श्रवण शक्ति को खो दिया हो। बोलना सीखने के उपरान्त श्रवण शक्ति नष्ट होने पर उसे सुनने के अयोग्य या अपूर्ण बधिरों की संज्ञा दे सकते हैं।

जो छात्र पूर्ण बधिर होते हैं उन्हें उनके लिये स्थापित विशिष्ट पाठशालाओं में भेजना चाहिए।

शल्य चिकित्सा द्वारा श्रवण शक्ति को पुनः प्राप्त किया जा सकता है, अथवा श्रवण उपकरण द्वारा उसमें सुधार किया जा सकता है। इसके लिये चिकित्सक की सहायता लेना आवश्यक है।

अपूर्ण बधिर छात्रों को साधारण बालकों की कक्षा में साथ-साथ पढ़ने का स्थान देना चाहिए। उसे कक्षा मे आगे बैठने के लिये स्थान मिलना चाहिए जिससे वह चलते हुए होठों को देख सके। इस प्रकार उसके समझ लेने के ज्ञान को विकसित करने का प्रयत्न करना चाहिए। आजकल यह तथ्य स्वीकार कर लिया गया है कि मौखिक वाणी के साथ गले का स्पन्दन होता है जो स्पष्ट मौखिक भाषण से भिन्न होता है, यह बहरे बच्चों के लिये वरदान सिद्ध हुआ है। अब उन्हें बोलने वाले व्यक्ति के 'अधरों' को पढ़ने के साथ-साथ बोलना भी सिखाया जा सकता है। किन्तु बहरे छात्रों को बोलना सिखाने के लिये अध्यापक मे बहुत धैर्य होना चाहिए जिससे वह बहरे छात्रों का मनोबल बढ़ा सके।

(६) हकलाने या दोषयुक्त वाणी वाले बालक :—तुतलाना, हकलाना, धीरे-धीरे बोलना, नाक दबा कर बोलना, मोटी आवाज आदि दोषयुक्त वाणी के चिह्न हैं। दोषयुक्त वाणी का कारण शारीरिक दोष हो सकता है। ऐसी स्थिति में छात्रों को स्कूल का परामर्शदाता या अध्यापक-परामर्शक किसी चिकित्सक के पास परीक्षणार्थ भेजते हैं।

हकलाने या तुतलाने का कारण बहुधा भारी आघात या गहरा भावनात्मक संघर्ष होता है। भावनात्मक दृष्टि से वह जितना ही उत्तेजित होता है उतना ही बिना संकोच के शब्दों के प्रयोग में उसे कठिनाई होती है। अतः ऐसे व्यक्ति से साक्षात्कार करके परामर्शदाता इस भावनात्मक स्थिति का मुख्य कारण ढूंढ कर छात्र का उस भावनात्मक स्थिति के प्रति रवैये में परिवर्तन लाने हेतु सहायता प्रदान करता है। यदि यह कठिनाई गम्भीर हो तो मानसिक रोग चिकित्सक की सहायता ली जाती है।

(७) निर्बल या कोमल :—वे ऐसे लोग हैं जिनकी शारीरिक दशा इस प्रकार की है कि उन्हें अपने शारीरिक स्वास्थ्य के लिए सदैव सचेत रहना पड़ता है। जैसे—किसी में रक्त की कमी, शक्ति की कमी इत्यादि। कोमल व्यक्ति शारीरिक श्रम करने से थक जाता है तथा बीमार पड़ जाता है। अधिकतर ऐसे कोमल व्यक्ति उचित भोजन की कमी के कारण होते हैं।

पाठशाला में समय-समय पर शारीरिक परीक्षा कर चिकित्सक की सलाह के अनुसार खान-पान किया जाय तो यह दोष दूर किया जा सकता है।

(२) मानसिक न्यूनता से ग्रसित बालक

साधारण रूप से ९० से कम बुद्धिलब्धि वाले बालक इस श्रेणी में आते हैं। किन्तु इसमें ० से ५ के बीच जिनकी बुद्धिलब्धि है उन्हें भी इस श्रेणी में शामिल किया जाता है। ० से २४ तक की बुद्धिलब्धि जड़ (idiots) होती है। २५ से ४९ तक की बुद्धिलब्धि के मूढ़ (imbeciles) होते हैं। ५० से ७० तक के बुद्धिलब्धि के मूर्ख (Morons) तथा ९० से कम बुद्धिलब्धि वालों को मन्दबुद्धि बालक (Feeble minded) कहते हैं।

बालकों की मानसिक योग्यता की परीक्षा होनी चाहिए और उनके माता-पिता को इसका पूर्ण ज्ञान कराना चाहिए। मानसिक न्यूनताग्रसित के साथ हमारा व्यवहार बड़ा ही सहानुभूतिपूर्ण, धैर्यपूर्ण होना चाहिए। यदि मानसिक न्यूनता ग्रसित बालक साधारण पाठशाला में प्रवेश लेता है तब उसकी अल्पबुद्धि आगे बढ़ने में बाधक होगी अथवा वह निम्न श्रेणी में ही रहेगा और अधिक

समय नष्ट करेगा। अतः यह आवश्यक है कि उन्हें विद्यालयों में उचित शिक्षा का अवसर देना चाहिए। उनको साधारण शब्दकोश सिखाना चाहिए। उनके पढ़ने की सामग्री रुचिपूर्ण होनी चाहिए और साधारण रूप से शिक्षा तथा सीखना—दोनों ही साथ-साथ चलना चाहिए। उन्हें व्यावसायिक शिक्षा भी देनी चाहिए जिससे कि वे उद्योग में सफलता प्राप्त कर सकें और उचित रूप से अपनी जीविका को चला सकें।

जिन बालकों की वृद्धिलब्धि ५५ से कम है, उन्हें विशेष प्रकार की पाठ-शाला मे भेजना चाहिए।

(२) प्रतिभाशाली बालक

ऐसे बालकों की वृद्धिलब्धि १२० से ऊपर होती है। यथार्थ रूप से २% से अधिक बालक इस श्रेणी के नही होते। प्रतिभाशाली बालक दिया हुआ कार्य बहुत शीघ्र करते हैं। कक्षा में जहाँ उन्हें औसत या औसत से निम्न श्रेणी के बालकों के साथ रहना पड़ता है तब उन्हें कक्षा के कार्य में कोई उत्तेजना नहीं मिलती व कक्षा का कार्य उनके लिए अरुचिपूर्ण हो जाता है। परिणामतः उनके अन्दर सुस्ती, बेचैनी और नटखटपन उत्पन्न हो जाता है।

यदि शारीरिक या मानसिक अस्वस्थता हस्तक्षेप न करे तो सम्भवतया वे अपने अध्ययन काल में निम्नलिखित लक्षणों का परिचय देते हैं :—

तीव्र निरीक्षण, अध्ययन सामग्री में शीघ्रता और शुद्धता से प्रवीणता प्राप्त करना, अच्छी स्मरण शक्ति, तत्काल उत्तर, अच्छा ज्ञान, स्पष्ट बहुधा मौलिक विचार और तर्कसंगत बात, बुद्धिपूर्वक जिज्ञासा और अनौपचारिक रूप से अर्जित विशद् ज्ञान, विस्तृत शब्दावली और विशाल पठन रुचि (उच्च वयस्क के समान)।

प्रतिभाशाली बालकों की पहचान :—निम्नलिखित विधियाँ अपनाई जा सकती हैं :—

(१) प्रतिभावान बालकों के अध्ययन से पता लगा है कि वे उच्च कुल में अधिक उत्पन्न होते हैं। उनके माता-पिता अधिकतर व्यापार या किसी स्वतन्त्र व्यवसाय के पेशे को अपनाये रहते हैं। छोटे पेशे को अपनाने वाले व्यक्तियों की सन्तानों में बहुत ही कम मात्रा मे प्रतिभावान बालक होते हैं। प्रतिभावान लड़के और लड़कियाँ बराबर संख्या मे पाये जाते हैं।

(२) बुद्धि की वस्तुगत परीक्षाएँ प्रतिभावान बालकों को सही रूप में स्पष्ट करती हैं।

(३) शारीरिक गुण में अपने साथ के तथा उम्र के अन्य बालकों की तुलना में भी प्रतिभावान उच्च होते हैं। वे पैदा होते समय औसतन दूसरे बालकों से अधिक बड़े होते हैं, जल्दी ही चलना आरम्भ कर देते हैं, उनके साधारण स्वास्थ्य की अवस्था अच्छी होती है और उनमें किशोरावस्था के लक्षण शीघ्र उत्पन्न हो जाते हैं।

(४) उनमे से अधिकतर पढ़ाई मे साधारण से अच्छे होते हैं। वे पढने मे तथा ज्ञान प्राप्त करने मे रुचि लेते है। इसी प्रकार प्रतिभावान बालक कला, गायन, विद्या आदि में रुचि लेते हुए पाये गये हैं।

(५) वे अमूर्त वस्तुओ मे अधिक रुचि लेते हैं तथा कठिन विषयों में सरल की अपेक्षा अधिक रुचि लेते हैं।

(६) खेल मे प्रतिभावान बालक अधिक रुचि नही लेते। वे लोग अपने से अधिक उम्र वाले साथियों के साथ चिन्तनयुक्त कार्यों मे अधिक रुचि लेते हैं।

(७) व्यक्तित्व को मापने वाली परीक्षाओं में ये बालक निश्चित रूप से उत्तम होते हैं।

प्रतिभाशाली बालकों का निर्देशन

(१) प्रतिभावान बालकों मे किसी एक विशेष क्षेत्र मे जैसे संगीत, कला, नाटक, यंत्र, साहित्य या विज्ञान मे विशेष योग्यता होती है। अतः उनके विशेष गुण को ढूंढ कर तत्काल छोटी उम्र मे रचनात्मक कार्यों मे लगाना अमनोवैज्ञानिक है। प्राथमिक स्कूल के अध्यापक और परामर्शदाता (यदि विद्यालयों मे हो तो) को बालक के विशेष गुण या प्रतिभा को विकसित करने में बढ़ावा देना चाहिए यद्यपि बचपन की अन्य अभिरुचियों तथा गतिविधियो को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। मानसिक योग्यता को छोड़कर प्रतिभावान बालक आखिर बच्चा ही है अतः अन्य बालको के समान वह भी अपने समवयस्को के साथ घुलना-मिलना चाहता है और इसकी उसे आवश्यकता है। ऐसा करने से रोकने पर तथा उस पर अमुक कार्य करने सम्बन्धी दबाव डालने पर हो सकता है वह हमेशा के लिए अधीनस्थ पदों पर कार्य करे। उसकी प्रतिभा का स्वय के लिए तथा समाज के लिए कुछ भी उपयोग नही होगा। जहाँ पर 'दबाव पूर्ण" वातावरण दिखाई देता है वहाँ माता-पिता से बातचीत करना आवश्यक है।

प्रतिभावान बालक अपनी किशोरावस्था से पूर्व या प्रारम्भिक किशोरावस्था के विकास काल में अपने भविष्य के विषय मे गम्भीरता से विचार करने लगता है। अतः शैक्षणिक एवं व्यावसायिक योजना तैयार करने मे सहायता प्रदान

करना मिडिल स्कूल या ६वीं कक्षा के अध्यापक या परामर्शदाता का कर्त्तव्य है।

प्रारम्भिक किशोरावस्था से आगे तक प्रतिभा सम्पन्न छात्र का मार्गदर्शन एक नाजुक कार्य है। प्रतिभा सम्पन्न बालकों की बुद्धि तीव्र होने के कारण वे परामर्शदाता या अध्यापक के व्यवहार या रवैयों के प्रति सचेत रहते हैं। जिस अध्यापक का व्यवहार वह अयोग्य या व्यक्तिगत रूप से अवांछनीय समझता है उसका वह कटु आलोचक हो सकता है। अपने स्कूल के अनुभवों द्वारा उसकी अपनी शक्तिशाली योग्यताओं का पूर्ण विकास करने के लिए यह आवश्यक है कि :—

(i) उसकी व्यक्तिगत योग्यतायें, शैक्षिक सफलता तथा रुचियों सम्बन्धी यथासम्भव अधिक-से-अधिक ज्ञान प्राप्त करें।

(ii) स्वयं के बारे में अधिक-से-अधिक जानने के लिए प्रोत्साहन दें।

(iii) अपने जीवन भर बौद्धिक जिज्ञासा का रवैया बनाये रखने तथा व्यावहारिक अनुसंधान में व्यस्त रहने के लिए उसे प्रेरित करना चाहिए।

९

निर्देशन के कार्यक्रम में अध्यापक का सहयोग

निर्देशन-कार्यकर्त्ता, विशेष रूप से प्राथमिक विद्यालयों मे जहाँ पर अध्यापक स्वयं मार्गदर्शक के रूप में कार्य करता है। उसमे निम्नलिखित गुण होने चाहिएँ :

(१) बच्चों की भलाई में रुचि

बालक मार्गदर्शन के कार्यक्रम का केन्द्र है। समस्त मार्गदर्शन वास्तविक शिक्षा के समान बालक में केन्द्रित है। शैक्षणिक निर्देशन की मुख्य समस्या बालक के शारीरिक, मानसिक, नैतिक व संवेगात्मक स्वरूपों का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्ययन करना है। अर्थात् यह कार्य अध्यापक के लिए बहुत कठिन तथा बड़ा कार्य है। उसमे बालक के प्रति वास्तविक प्रेम और सहानुभूति की भावना होनी चाहिए। वह सच्चे स्नेह तथा सहानुभूति के द्वारा ही बालक से निकटतम सम्पर्क स्थापित कर सकता है, उसे वास्तविक रूप से अच्छी प्रकार समझ सकता है। उसे बालक का अध्ययन करने के अनेक अवसर मिलते हैं। वह उसके साल प्रति साल सम्पर्क मे रहता है। और उसका कक्षा, खेल के मैदान, शाला की सभाओं, कैम्पों, भ्रमण आदि गतिविधियों में व्यवहार एवं सम्बन्धो को देख सकता है। अतः वह उसकी विशेष योग्यताएँ आदि गुणों को अच्छी प्रकार समझ सकता है।

अध्यापक का व्यक्तित्व बालकों के मस्तिष्क पर बड़ा प्रभाव डालता है। वह अपने अध्यापक से ज्ञात तथा अज्ञात रूप में बहुत-सी बातों को सीखता है।

अतः अध्यापक को स्वयं उच्च चरित्र का व्यक्ति होना चाहिए। उसे अपने छात्रों का मित्र, दार्शनिक और मार्गदर्शक का कार्य करना चाहिए। अतः अध्यापक के सहयोग का अत्यधिक महत्त्व है। यह आशा की जाती है कि हर शाला में अध्यापक मार्गदर्शन सेवाओं के सहायक-कार्यकर्त्ता के रूप में कार्य करेगा।

(२) बाल मनोविज्ञान का ज्ञान

अध्यापक को बाल मनोविज्ञान का ज्ञान होना चाहिए। मार्गदर्शन व्यक्तिगत विभिन्नता के मनोविज्ञान को आधार मानता है। अच्छा मार्गदर्शक, बालक को स्वयं से भलीभाँति जानने, क्षमता को जगाने, समाज में अपना स्थान प्राप्त करने और उसे सही प्रकार से बनाये रखने में मदद करता है। निर्देशन सेवाओं का एक अंग व्यक्तिगत समस्याओं से सम्बन्धित है, कुछ विद्यार्थी शाला में, कक्षा में किसी एक विशेष विषय में कमजोर हो सकते है, कुछ छात्रों को भावात्मक समस्याओं का शिकार होना पड़ता है, कुछ को सन्तुलन की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन सब समस्याओं को सुलझाने में व्यक्तिगत मार्गदर्शन की आवश्यकता है। अतः अध्यापक को बाल मनोविज्ञान के सम्बन्ध में ज्ञान होना चाहिए।

(३) शिक्षा और बालक का विकास

मार्गदर्शन का मुख्य उद्देश्य वही है जो उद्देश्य शिक्षा का है : प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्तित्व की समस्त शक्तियों को समाज का सक्रिय सदस्य होकर प्राप्त करने में मदद करना। "शिक्षा" बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं से निकट का सम्बन्ध रखती है। वे अवस्थायें निम्नलिखित हैं :—

(१) शैशवावस्था प्रारम्भ से ५ वर्ष तक।
(२) उत्तरबाल्यकाल ५ वर्ष से १२ वर्ष तक।
(३) किशोरावस्था १२ वर्ष से १८ वर्ष तक।
(४) प्रौढावस्था १८ वर्ष के बाद की उम्र से।

शैशवावस्था का समय कुछ विशेषतायें लिए होता है जैसे—कुछ कम प्रवृत्ति का विकास, स्वकीय प्रेम, संवेगात्मक भावनाएँ आदि। माता-पिता का व्यक्तित्व और व्यवहार बच्चे का व्यक्तित्व बनाने में बहुत कुछ मदद करते हैं। जिस बच्चे को माता-पिता चाहते हैं, जो जैसे घरेलू वातावरण में बढ़ते हैं, जहाँ उसका लालन-पालन प्यार से होता है वह अवश्य ही भविष्य में एक सन्तुलित

युवक के रूप में बनेगा। जिस बच्चे के प्रति माँ-बाप उदासीनता दिखाते हैं, जिसके माता-पिता कोई दुर्व्यवहार करते हैं, या किसी की सतत् आलोचना की जाती है ऐसे कुटुम्ब में बहुत सम्भव है कि बालक दुर्गुण अपना ले या बाल अपराधों की ओर झुक जाय। व्यक्ति का स्वभाव, बौद्धिक विशेषताएँ या कुछ शारीरिक योग्यताएँ आदि बहुत कुछ वंश परम्परा से प्राप्त होते हैं। दूसरी ओर रुचियाँ, कौशल आदि बातें वातावरण से प्राप्त होती हैं। बालक का व्यक्तित्व वंशानुक्रम और वातावरण दोनों के प्रभाव से बनता है। यह सत्य है।

बालक के जीवन में प्रथम पाँच साल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इस आयु में बच्चे पर उसकी माता का सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है और उसकी माता को हम बालक का प्रथम गुरु कह सकते हैं। उसमे निम्नलिखित गुण होने चाहिएँ :—

(१) भावों की सच्चाई
(२) सहानुभूतिपूर्ण आचरण
(३) सहनशीलता
(४) प्रसन्न चित्तता
(५) मृदु प्रवृत्ति
(६) व्यवहार कुशलता
(७) बच्चों की रुचि तथा आवश्यकताओं का ज्ञान
(८) घरेलू जीवन का ज्ञान।

शैशवावस्था की विशेषताएँ

(१) बालक शैशवावस्था मे मानसिक दृष्टि से पूर्ण विकसित नहीं होता है। बालक को कोई भी ऐसी बात नहीं सिखानी चाहिए जो उसकी समझ के बाहर हो। उदाहरण के लिए एक वर्ष का बालक साफ-साफ नहीं सीख सकता अतः उसे जबरदस्ती कोई भी बात सिखाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

(२) बालक का व्यवहार उसकी जन्मजात प्रेरणाओं (innate urges) पर आधारित है। ये प्रेरणाएं शीघ्र ही अपनी तृप्ति चाहती हैं। बालकों की इन प्रेरणाओं में परिवर्त्तन केवल सुख या दुःख की भावना से ही आता है। अतः प्रौढ़ व्यक्ति के समान नैतिक व्यवहार की उससे आशा नहीं करनी चाहिए, न उसके आचरण के लिए कोई अन्य कठोर नियम ही बनाना चाहिएँ।

(३) बालक में प्राकृतिक रूप से निर्भरता की प्रवृत्ति होती है। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये बड़ों का सहारा लेता है अतः वह अपने

को असहाय समझता है। अध्यापकों तथा अभिभावकों को उसके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। इसके साथ बालकों में आत्मनिर्भरता की आदतों का निर्माण करने का भी प्रयत्न करना चाहिए जिससे कि वे भविष्य में अपना जीवन सफलतापूर्वक बिता सकें।

(४) इस अवस्था में बालक सबसे अधिक कल्पनाशील होता है। वह परियों की कहानियों और काल्पनिक कहानियों में अधिक रुचि लेता है। वह अपने खेल-साथियों आदि के बारे में भी बहुत-सी असंगत कहानियों का वर्णन करता है। अतः इस स्तर के बालकों को पढ़ाने वाले अध्यापक अच्छे व्यक्तियों की कहानियों तथा महान व्यक्तियों के कार्यों का वर्णन करके उसकी कल्पनाशील भावना का समाधान कर सकते हैं।

(५) छोटा बालक परिचित वस्तुओं अथवा कार्यों को बार-बार दुहराने में अधिक आनन्द लेता है। इस प्रकार वह अपने आत्मप्रदर्शन की प्रवृत्ति की तुष्टि चाहता है।

(६) यह तथ्य आज सर्वमान्य है कि एक शिशु की काम-प्रवृत्ति पर्याप्त समृद्ध होती है। सबसे प्रथम बालक मे माता के प्रति प्रेम के स्थायी भाव का विकास होता है। पुत्रो में मातृभाव से तात्पर्य है—मा को प्यार करना जबकि उनमें पितृभाव से तात्पर्य है पिता को घृणा करना। इसी के कारण इडीपस भावना ग्रन्थि का निर्माण होता है।

पिता के प्रति घृणा की भावना का कारण पिता का कठोर स्वभाव हो सकता है। कक्षा में अध्यापक पिता के स्थान पर होता है अतः बालकों के मन में किसी प्रकार की घृणा अध्यापको के प्रति उत्पन्न न हो इस ओर अध्यापकों को ध्यान देना चाहिए।

बालिकाएँ पिता को प्यार करती हैं और माता को घृणा। यह 'इलेक्ट्रा भावना ग्रन्थि' है (ग्रीक पौराणिक कथाओ के अनुसार इलेक्ट्रा एक लड़की थी जिसको अपने पिता से प्रेम था अतः उसने अपने भाई को अपनी मां का कत्ल करने में सहायता दी थी।) तात्पर्य—इन भावना-ग्रन्थियों में फ्रायडवादी विचार अधिक उचित नहीं मालूम पड़ते हैं।

(४) अध्यापक का दायित्व

(i) शाला के अन्दर तथा बाहर छात्रों की क्रियाओं तथा व्यवहार को ध्यानपूर्वक देखना।

(ii) कक्षाओं मे पढ़ाए जाने वाले विभिन्न विषयों में प्राप्तांकों का स्तर क्या है ? सांवेगिक प्रवृति स्वभाव आदि का सचयी आलेख तैयार रखना।

बच्चों का असंतुलन निम्नलिखित कारणों से होता है :—

(अ) साथियों का गलत चुनाव

(ब) पठन-पाठन की दोषपूर्ण विधि

(क) घर की आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति।

बालक का संतुलन निम्नलिखित कारणों पर निर्भर करता है :—

(अ) मित्रों का चुनाव

(ब) शाला का अच्छा वातावरण

(क) प्रभावशाली शिक्षण पद्धतियाँ

(ख) शालाओं में छात्रों के लिए दोपहर का भोजन।

(ख) घर की अच्छी आर्थिक स्थिति।

(ग) बालक को किसी उपयोगी क्रिया में व्यस्त रखना।

किशोरावस्था की विशेषताएँ

(१) भिन्न लिंगीय व्यक्तियों में आकर्षण।

(२) वीर पूजा।

(३) साहसपूर्ण कार्यों की भावना।

(४) रुकावटों के विरुद्ध विद्रोह।

(७) प्रशंसा और इसी क्रम में आकर निर्देशन सेवाएँ बालकों को विभिन्न पाठ्यक्रम चुनने में मदद देती हैं।

(५) शिक्षक-परामर्शक के व्यक्तिगत गुण

निर्देशन सेवाओं की सफलता अध्यापक की योग्यता और व्यक्तिगत गुणों पर निर्भर करती है। शिक्षक-परामर्शक में निम्नलिखित गुण होने चाहिएँ :—

(१) बालकों को समझने की योग्यता।

(२) अन्य व्यक्तियों के साथ अच्छा सम्पर्क बनाये रखने की योग्यता।

(३) जिम्मेदारी की भावना।

(४) स्वयं के कार्य के प्रति प्रेम।

(५) व्यावसायिक दृष्टिकोण।

(६) नेतृत्व की योग्यता और नवीनता।

(७) व्यक्तियों के प्रति मित्रता की भावना तथा उनकी सहायता।

(८) निष्पक्षता और ईमानदारी ।

(९) प्रसन्नचित्तता और साहस ।

(१०) दृढ़ और आत्म-विश्वासी ।

(६) शिक्षक-परामर्शक का चुनाव

किसी भी शाला में कक्षा-अध्यापक मुख्य व्यक्ति होता है। उसमें निम्नलिखित गुण होने चाहिएँ :—

(i) शैक्षिक योग्यता ।

(ii) राजनैतिक झुकाव से स्वयं को अलग रखना ।

(iii) शिक्षण व्यवसाय के प्रति प्रेम ।

(iv) बौद्धिक मार्गदर्शक होने की योग्यता।

अतः एक अध्यापक परामर्शक का चुनाव बहुत सावधानी से करना चाहिए। उसके समस्त संबंधी अभिलेख को ध्यानपूर्वक देखा जाय। अगर उसके पास मनोविज्ञान में कोई योग्यता हो तो उसे प्राथमिकता दी जाय। उसके चुनाव के पश्चात् उसे मार्गदर्शन के क्षेत्र में विशिष्ट प्रशिक्षण दिया जाय जिससे वह अपने व्यावसायिक दायित्व को भलीभाँति निभा सके। मार्गदर्शन के लिए आवश्यक परखों की जानकारी तथा उनके उपयोग एवं प्रशासन की पद्धति आदि का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है।

(७) सामाजिक सम्पर्क

शिक्षा का बदलता हुआ स्वरूप ध्यान में रखते हुए माता-पिता या संरक्षक को शिक्षा के प्रति अपनी जिम्मेदारी को निभाना आवश्यक है। अध्यापक को स्थानीय समाज, शाला और माता-पिता से घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करना चाहिए।

अतः प्रत्येक शाला में एक शिक्षक-अभिभावक संघ की स्थापना होनी चाहिए जिसमें सभी विचारधाराओं और सभी वर्गों के अभिभावक हों। शालाओं को युवक कल्याण संस्थाओं से भी सम्पर्क स्थापित करना चाहिए जैसे :—भारत सेवक समाज, भारत स्काउट एवं गाइड्स संस्था, रेडक्रॉस सोसाइटी, वाय. एम. सी. ए., रोटरी क्लब आदि। माता-पिता को मुख्य-मुख्य अवसरों पर शालाओं में आमन्त्रित किया जाय और अन्य कार्य दिवसों पर भी उनमें से कुछ को शाला की कार्यविधि दिखलाई जाय ताकि वह शालीय कार्यक्रमों में रुचि ले सकें। परिणामतः वह भी अपने बच्चे के विकास में मदद कर सकें।

१०

निर्देशन के कार्य में घर व समाज का योग

(१) माता-पिता की निर्देशन सम्बन्धी गलत धारणा

यह एक माना हुआ तथ्य है कि भारतीय माता-पिता में अपने बालक के मार्गदर्शन सम्बन्धी चाहे वह व्यक्तिगत, शैक्षणिक अथवा व्यावसायिक क्षेत्र में हो, जिम्मेदारी की भावना कम है। वे गलत धारणा रखते हैं कि बालकों को सही मार्गदर्शन देना केवल शाला का ही पवित्र कर्त्तव्य है। माता-पिता इस बात को भूल जाते हैं कि बच्चे अपने जीवन मे महत्त्वपूर्ण तथा अत्यन्त प्रभावशाली वर्षों में उनके निकटतम सम्पर्क में रहता है और ज्ञात तथा अज्ञात रूप से अपने माता-पिता से और परिवार के अन्य सदस्यों से बहुत से गुणों को सीखता है। दूसरी बात यह है कि शाला की तुलना में उसका अधिकांश समय घर पर बीतता है। इसलिए बालकों को मार्गदर्शन देना माता-पिता का मुख्य कर्त्तव्य है।

माता-पिता के इस कर्त्तव्य के प्रति उपेक्षा के कारणों को समझने के लिए उन्हें तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है :—

(१) शिक्षित माता-पिता तथा बालकों मे रचनात्मक रुचि रखने वाले।

(२) शिक्षित साधन सम्पन्न परन्तु उपेक्षा रखने वाले।

(३) अशिक्षित माता-पिता एवं इसकी क्षमता न रखने वाले।

पहले प्रकार के माता-पिता से कोई कठिनाई उत्पन्न नहीं होती परन्तु उनकी संख्या कम है। वे बालकों के प्रति अपनी जिम्मेदारी को पूर्णतया समझते हैं।

दूसरे प्रकार के माता-पिता अपनी जिम्मेदारी को समझ सकते हैं परन्तु अपनी योग्यता या समय के अभाव के कारण कुछ नहीं कर पाते। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होने के कारण वे अपने बच्चों को किसी आवासीय शाला में भेजकर या किसी शिक्षक अभिभावक को नियुक्त कर अपना कार्य पूरा समझते हैं। परन्तु ऐसी व्यवस्था के कारण संतुष्टि नहीं होती। बालकों को शैक्षिक मार्गदर्शन तो मिलता है किन्तु व्यावसायिक मार्गदर्शन नहीं मिलता। ऐसे माता-पिता की संख्या कम है।

तीसरे प्रकार के मां-बाप की ही संख्या अधिक है। इसी कारण सही मार्गदर्शन की यह समस्या अधिक चिन्ताजनक बनी है। इस चिन्ताजनक स्थिति के कई कारण हो सकते हैं :—

(१) माता-पिता में शिक्षा की कमी।

(२) पारिवारिक जीवन का असन्तुलित होना।

(३) आर्थिक कठिनाई।

(४) सीमित दृष्टिकोण।

(५) समय का अभाव

(२) माता-पिता की जिम्मेदारी

माता-पिता की यह प्रथम जिम्मेदारी है कि वे बच्चे को व्यक्तिगत, शैक्षिक एवं व्यावसायिक क्षेत्र में उचित निर्देशन दें।

(१) व्यक्तिगत निर्देशन :—माता-पिता को अपने कार्य और रुचिकार्यों पर ध्यान देना चाहिए जिससे कि वे बच्चे के कार्य की देखभाल कर सकें। बच्चा अपने माता और पिता के शब्दों और कार्यों के तरीके, आदत, पसन्द, नापसन्द को सीखता है। घर में रहकर ही बच्चा बहुत-सी बातें सीखकर बाह्य जीवन में कार्यरूप में परिणित करता है। बच्चों का व्यक्तित्व घर में बनता है। बच्चे का लालन-पालन गलत ढंग से होने से आगे ऐसी क्रियाओं का जन्म हो सकता है जिनसे उसका भविष्य नष्ट हो सकता है। उदाहरणार्थ जिस परिवार में माता-पिता सड़क पर खड़े होकर चाय आदि पीते हैं उसमें उनके बच्चे भी आगे चलकर सड़कों पर चाय खड़े होकर पीते हुए आदि दिखाई देते हैं।

माता-पिता को अच्छे कार्य करने के लिए बालकों को प्रोत्साहित करना चाहिए और बुरे कार्यों के करने से हतोत्साहित करना चाहिए। बच्चे को कैसे प्रोत्साहित या हतोत्साहित किया जाय यह कला है। यह कला सीखना माँ-बाप का कर्तव्य है।

(२) शैक्षणिक निर्देशन :—माता-पिता से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती है कि वे अध्यापक जैसा दायित्व निभा लें परन्तु घर पर पढ़ाई में सही ढंग से समय लगाता है इसको देखना, कभी-कभी बच्चे की पढ़ाई के बारे मे पूछताछ, घर पर पढ़ने को अच्छा वातावरण देना, शाला में जाकर उसके विषयों की प्रगति के सम्बन्ध में शिक्षक से बातचीत करना, छात्र के संचयी प्रगतिपत्र को ध्यान से देखना तथा उसके अनुसार बच्चों को प्रोत्साहन देना आदि बातों से वह अपने बच्चे की देखभाल कर सकता है।

(३) व्यावसायिक निर्देशन :—यह माता-पिता का कर्त्तव्य है कि वे बच्चे की रुचि और योग्यता के अनुसार उसके लिए व्यवसाय की व्यवस्था करे। इसके लिए उन्हें बालको के अध्यापक से सलाह लेना आवश्यक है तथा उस व्यवसाय के लिए आवश्यक पूर्व तैयारी की दृष्टि से योजना बनानी चाहिए।

(२) माता-पिता को शिक्षित करना

जब तक माता-पिता को बालको की भलाई की योजनाओं के बारे में आधुनिक औद्योगिक जीवन की विषमताओं और बच्चे के निर्देशन के प्रति उसकी जिम्मेदारियों के बारे मे उन्हें शिक्षित नही किया जायगा तब तक हमें मार्गदर्शन की सफलता की आशा नही करनी चाहिए। इसका भार अध्यापकों तथा परामर्शदाताओं पर पड़ता है। निम्नलिखित बिन्दुओं पर शिक्षा दी जानी चाहिए :—

(i) बाल मनोविज्ञान तथा बाल विकास के मोटे-मोटे सिद्धान्त।
(ii) शैक्षणिक संगठन।
(iii) शाला संगठन के मोटे-मोटे नियम और बच्चे की प्रगति।
(iv) व्यावसायिक तथा शैक्षणिक सूचनाएँ और उनको अपनाने की परिस्थितियाँ।
(v) संस्थाओं का नैतिक स्तर।

उक्त बिन्दुओं पर उन्हे शिक्षित करने में निम्नलिखित बातें उपयोग में लाई जा सकती हैं :—

(i) अभिभावक शिक्षक संघ के माध्यम से आवश्यक जानकारी और ज्ञान प्रदान करने वाली वार्त्ताएँ देना।
(ii) सम्बन्धित साहित्य तैयार करवा कर और उसका वितरण करवा कर।
(iii) शाला का वर्ष भर का तिथि-पत्रक उन्हें उपलब्ध करवा कर।
(iv) दृश्य-श्रव्य साधनों द्वारा।

(v) शैक्षणिक तथा व्यावसायिक सामग्री प्रदर्शनियों का आयोजन।

(vi) अच्छे सांस्कृतिक प्रदर्शन का आयोजन करना।

(३) निर्देशन में माता-पिता का सहयोग

माता-पिता होने के नाते वे स्वयं बच्चे के व्यक्तित्व और घर के वातावरण से अच्छी प्रकार परिचित होते हैं। बालक में क्या कमजोरियाँ हैं ? इनका निदान करने के लिए वे बच्चे के बारे में सूचना, पारिवारिक इतिहास और बच्चा कैसे सामाजिक वातावरण में पला है, इन सब के सन्दर्भों में विस्तृत जानकारी दे सकते हैं। बच्चे के स्वयं के हित में उन्हें मनोवैज्ञानिक या परामर्शदाता या अध्यापक से कोई भी तथ्य या जानकारी छिपाना नहीं चाहिए और सही-सही जानकारी प्रदान करनी चाहिए। सभी माता-पिता बच्चों के बारे में बहुत-सी बातें जानते हैं—जैसे बच्चे की जन्म-तिथि, उम्र, स्वास्थ्य, शारीरिक विकास, उसका परिवार के अन्य सदस्यों से व्यवहार, उसकी पसंदगी तथा नापसंदगी आदि। परिवार के विषय में भी माता-पिता को सब कुछ ज्ञान होता है। उन्हें पारिवारिक सदस्यो, बच्चे के भाई-बहनों, परिवार में बच्चे का स्थान, पारिवारिक आमदनी, उनकी लेनदारियाँ और देनदारियाँ, पारिवारिक व्यवसाय तथा संस्कृति और आचरणों के विषय में भी जानकारी होनी चाहिए। इसी प्रकार कमजोरियों के सम्बन्ध मे भी जानकारी देने मे हिचकिचाहट नहीं करनी चाहिए जिनका प्रतिकूल प्रभाव बच्चे पर पड़ता है। इसके अतिरिक्त माता-पिता को अपने बच्चे के सामाजिक वातावरण, उसके साथियों, उसकी उम्र, रुचियाँ, व्यवसाय और व्यवहार के बारे में भी जानकारी रखना तथा आवश्यकता पड़ने पर कक्षा-अध्यापक या परामर्शदाताओं को यह सूचना बतानी चाहिए। बच्चा किस प्रकार अपने खाली समय को बिताता है यह भी जानना माता-पिता का कार्य है।

अभिभावक शिक्षक संघ की बैठकों मे माता-पिता को सक्रिय भाग लेकर अपना सहयोग देना चाहिए। इसी प्रकार विशेषज्ञों द्वारा दी गई सलाह को भी उसे कार्यरूप में परिणित करना चाहिए जिससे यदि बच्चे में कोई बुराई आ रही हो तो उसे समाप्त किया जा सके और बच्चे पर पड़ने वाले अवांछनीय प्रभावों को तुरन्त रोका जा सके।

(४) निर्देशन के कार्यक्रम में माता-पिता का सम्पर्क

साधारणतया माता-पिता या अभिभावक अध्यापकों और परामर्शकों से सम्पर्क स्थापित करने में विशेष रुचि नहीं रखते। अतः इस दिशा में शिक्षकों

मनोवैज्ञानिकों को कदम उठाना चाहिए और ऐसा वातावरण निर्माण करना हिए कि उनके साथ घनिष्ठ और अटूट सम्बन्ध स्थापित हो जाय। इसके लिए में अधिक श्रम और लगन की आवश्यकता होगी। इस दिशा में नीचे दिये प्रयास लाभदायक हो सकते हैं :—

(i) सभी शालीय कार्यक्रमों या उत्सवों के अवसर पर माता-पिता को दर निमन्त्रित किया जाय।

(ii) उन्हें अभिभावक-शिक्षक संघ का सक्रिय सदस्य बनाया जाय। इस ठन के द्वारा तथा आपस के इस सम्पर्क के कारण कौन-कौन से लाभ हो ते हैं इसकी जानकारी देनी चाहिए।

(iii) अध्यापक लोगों को विशिष्ट अवसर पर बालकों के घर पर भी ा चाहिए जिससे वे उनके घर के वातावरण का अध्ययन कर सकें। अच्छा यह है कि घरों पर जाना एक संगठित ढग से हो। नगर या ग्राम को ना-बद्ध पद्धति से मुहल्लेवार बँटवारा करके उसमे या छात्रों के पडोस के ल्ले में रहने वाले अध्यापक को यह कार्य सौंप दिया जाये। कक्षा अध्यापक इसमें विशेष योग उचित है।

(iv) किन्हीं दुःखद अवसरों पर जैसे—बालक के परिवार में किसी की के अवसर पर अध्यापकों को उसके घर पर जाना आवश्यक है। लगातार में उपस्थित होने के फलस्वरूप छात्र की बीमारी का पता लगने पर भी के घर जाना बालक के तथा विद्यालय के हित मे होगा।

(v) अध्यापक और अभिभावक दोनों को ही बच्चे के व्यवहार मे होने परिवर्तन को एक दूसरे के ध्यान में लाना चाहिए।

(vi) अभिभावक तथा अध्यापक के सम्मिलित भ्रमण का आयोजन किया ।

अभिभावक शिक्षक संघ की स्थापना

अभिभावक शिक्षक संघ की स्थापना निम्नलिखित दृष्टिकोण से बहुत पूर्ण है :—

(i) घर तथा विद्यालय में ऐसा सामंजस्य स्थापित करना जहाँ बच्चे की ई तथा मार्गदर्शन के सम्बन्ध में एक दूसरे से विचार-विमर्श किया जा ।

(ii) एक दूसरे को अच्छी प्रकार समझने के लिये व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित के।

(iii) अभिभावकों को उनके बच्चे के सम्बन्ध में व्यक्तिगत, शैक्षणिक तथा व्यावसायिक मार्गदर्शन से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करना।

अभिभावक-शिक्षक संघ को प्रभावपूर्ण तथा सफल बनाने के लिये उनके संगठन का सुचारु रूप से गठन किया जाय जिसमें शाला का प्रधानाध्यापक, अभिभावकों में से सदस्य, कक्षा अध्यापक तथा कक्षा से निर्वाचित कुछ छात्र हों तो अधिक उत्तम होगा। संघ की बैठकें नियमित रूप से होनी चाहिएँ। कम-से-कम तीन महीने में एक बार हो तो अधिक अच्छा है।

११

शैक्षणिक तथा मनोवैज्ञानिक परीक्षाएं

परीक्षा का अर्थ तथा उसके कार्य

जितने समय तक विद्यार्थी शिक्षक के सम्मुख रहता है और जितने समय तक शिक्षक विद्यार्थी का निरीक्षण करता है मूल्यांकन की विधि निरन्तर चलती रहती है। परन्तु एक अध्यापक कितने विद्यार्थियों को अध्ययन करा सकता है यह विचारणीय प्रश्न है। जो बालक बुद्धिमान है वह बुद्धिमान बालक के समान व्यवहार करेगा। जो बालक पिछड़ा हुआ है वह पिछड़े बालक के समान व्यवहार करेगा। इस प्रकार भिन्न-भिन्न बालकों का व्यवहार भिन्न-भिन्न होगा। किसी एक अध्यापक के लिये इन सब बालकों के व्यवहार का निरीक्षण करना असम्भव नहीं किन्तु कठिन अवश्य है। अतः व्यवहार-परिवर्तन का अध्ययन करने के लिये किसी पत्र में एक समस्या प्रस्तुत कर दी जाती है और विद्यार्थियों के उत्तरों से उस व्यवहार के सम्बन्ध में अनुमान लगाया जाता है। इसी को हम परीक्षा (Test या परख) कहते हैं। मानसिक योग्यताओं का अध्ययन करने के लिये मानसिक परीक्षाओं का उपयोग किया जाता है।

अब प्रश्न यह है कि परीक्षा के कार्य क्या हैं? (१) परीक्षा का सबसे मुख्य कार्य मार्गदर्शन करना है। मार्गदर्शन भी अनेकों प्रकार का होता है जैसे—कक्षा ६ में अनेकों पाठ्यक्रमों में से किसी एक पाठ्यक्रम को चुनना, शाला की पढ़ाई समाप्त करने के पश्चात् उचित व्यवसाय में प्रवेश लेना। उदाहरणार्थ—यदि एक विद्यार्थी उच्च बुद्धि का है, प्रोग्रेसिव मैट्रिसेज तथा स्पेस टैस्ट में प्राप्तांक अच्छे हैं, वह विज्ञान विषयों में अच्छे अंक प्राप्त करता है और उसकी रुचि

भी प्रयोगात्मक कार्यों में है तो हम निःसंकोच उसे विज्ञान विषय के लिये मार्गप्रदर्शन कर सकते हैं। व्यावसायिक मार्गदर्शन के लिये अभिरुचि परीक्षाएँ तथा रुचि परीक्षाएँ अधिक सहायक होती हैं।

(२) विभिन्न योग्यता वाले विद्यार्थियों का वर्गीकरण करना। एक ही कक्षा में तीव्र बुद्धि, सामान्य बुद्धि तथा मंद बुद्धि वाले बालक होने पर किस स्तर वाले बालकों के अनुसार पाठ्यक्रम पढ़ाया जाय यह प्रश्न है। अतः परीक्षा के परिणामों के आधार पर बालकों को समान योग्यता वाले वर्गों में बांटना आवश्यक है। किन्तु यह कार्य गोपनीय होना चाहिए। इस संबंध में छात्रों को तथा उनके अभिभावकों को जानकारी नहीं होनी चाहिए।

(३) परीक्षा का कार्य निदान करना है। नैदानिक परीक्षाओं की सहायता से विद्यार्थियों की विषय सम्बन्धी कठिनाइयों का निदान किया जाता है तथा उपचार किया जाता है।

(४) परीक्षा का कार्य भविष्यवाणी करना भी है। वास्तव में तो यह कार्य मार्गदर्शन कराने से अलग नहीं है। भविष्यवाणी करने का कार्य मुख्यतः अभि-रुचि परीक्षाओं का होता है जिनमें हम क्षमता का मापन करते हैं और उसके आधार पर व्यक्ति को कौन-सा व्यवसाय या कौन से विषय चुनने चाहिएँ, इसकी भविष्यवाणी करते हैं। वैसे देखा जाय तो कोई भी परीक्षा भविष्यवाणी कर सकती है। यदि एक विद्यार्थी विज्ञान विषय की सब प्रमापीकृत परीक्षाओं में अच्छे अंक प्राप्त करता है तो हम भविष्यवाणी कर सकते हैं कि यदि भविष्य में अन्य सब परिस्थितियाँ समान हों तो वह विद्यार्थी विज्ञान विषय में अच्छी प्रगति करेगा। यदि विज्ञान विषय में वास्तविक अच्छी प्रगति होती है तो हम समझते हैं कि हमारी भविष्यवाणी सफल रही। हमारी परीक्षाएँ तभी सफल भविष्यवाणी कर सकती हैं जबकि उनमें भविष्यवाणी वैधता हो।

(५) अन्वेषण या अनुसंधान करना परीक्षा का एक कार्य है। परीक्षा के परिणामों के आधार पर विभिन्न स्तरों के विद्यार्थियों के लिये पाठ्यक्रम तैयार किया जा सकता है या उसमें सुधार किया जा सकता है। विभिन्न विद्यालयों के विद्यार्थियों की योग्यता की तुलना तथा विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों की योग्यता में क्या भेद है इसका अनुसंधान करने के लिए परीक्षाएँ अति उपयोगी हैं।

उक्त जानकारी से स्पष्ट है कि शिक्षा के क्षेत्र में परीक्षा महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। अतः अब प्रश्न यह है कि अच्छी परीक्षा की विशेषताएँ कौन-कौन सी हैं?

अच्छी परीक्षा या मापन प्रविधि की मुख्य विशेषताएँ

परीक्षा-निर्माता भी परीक्षा-निर्माण करते समय निम्नलिखित विशेषताएँ ध्यान में रखता है :

(१) विश्वसनीयता—व्यावहारिक रूप से यह परिचित शब्द है। यदि हमारा मित्र आज एक मत प्रकट करता है और कल उसी के बारे में उल्टा मत प्रकट करता है तब हम कहेंगे कि वह विश्वास का पात्र नहीं है अर्थात् उसमें विश्वसनीयता नहीं है। विश्वसनीय परीक्षा में यदि कुछ बालकों के अंक अच्छे आते हैं तो जब भी वह परीक्षा उन्हें दी जाय तब उनके अंक अच्छे ही आने चाहिएँ। यदि किसी परीक्षार्थी के अंक उस परीक्षा में किसी अवसर पर ३० और किसी अवसर पर ५४ आ गये हों तो वह परीक्षा विश्वसनीय नहीं कहलाएगी।

(२) वैधता—सम्भवतः वैधता परीक्षा की सबसे प्रमुख और अनिवार्य विशेषता है। वैधता का अर्थ है कि परीक्षा को शुद्धता तथा सार्थकता के साथ उसी योग्यता का मापन करना चाहिए जिसके मापन के लिए वह परीक्षा तैयार की गई है। परीक्षा जिस श्रेणी, विद्यार्थियों के लिए और जिस विषय या योग्यता का मापन (अथवा जिस उद्देश्य) के लिए बनाई गई है वह परीक्षा यदि केवल उस श्रेणी अथवा स्तर के विद्यार्थियों की केवल उसी विषय-ज्ञान को मापती है तो वह परीक्षा वैध मानी जाती है। उदाहरणार्थ कक्षा ७ के लिए इतिहास का मापन। यह परीक्षा कक्षा ७ के ही स्तर का ज्ञान मापती है (अर्थात् कक्षा ६ या ८ का नहीं) और केवल इतिहास का ही ज्ञान मापती है (अर्थात् उस परीक्षा में नागरिक शास्त्र के ज्ञान के प्रश्न नहीं हों) तो वह परीक्षा वैध मानी जाएगी।

यह कोई आवश्यक नहीं है कि यदि परीक्षा विश्वसनीय है तो वैध भी होगी परन्तु परीक्षा के वैध होने के लिए वह परीक्षा विश्वसनीय अवश्य होनी चाहिए। उदाहरणार्थ—अंकगणित सम्बन्धी परीक्षा को अनेकों बार लेने पर विद्यार्थी के ही निश्चित अंक प्राप्त करते हैं ऐसी स्थिति में यह स्पष्ट है कि वह परीक्षा विश्वसनीय है किन्तु हो सकता है कि वह परीक्षा अंकगणित सम्बन्धी योग्यता का मापन ही न करे बल्कि "रेखागणित सम्बन्धी योग्यता" का मापन करे। अर्थात् वैधता के पूर्व कोई भी परीक्षा विश्वसनीय होनी चाहिए।

(३) वैषयिकता अथवा वस्तुनिष्ठता—यदि परीक्षा वैषयिक नहीं है तो विश्वसनीय तथा वैध भी नहीं होगी। कोई परीक्षा वैषयिक तब होगी है जब

उसके प्रत्येक प्रश्न के उत्तर में अंक देते समय विभिन्न परीक्षकों में मतभेद न हो, किसी प्रश्न की व्याख्या या उनका अर्थ भिन्न-भिन्न प्रकार से न किया जा सकता हो।

(४) व्यापकता—व्यापकता का अर्थ यह है कि परीक्षा जिस योग्यता का मापन करने के लिए बनाई गई हो उस योग्यता के सम्पूर्ण क्षेत्र या जिस पाठ्यक्रम पर आधारित हो उसके समस्त अंगों पर प्रश्न पूछे जायें। परन्तु ऐसा करने से एक परीक्षा में हजारों प्रश्न हो जायेंगे। व्यावहारिक दृष्टि से प्रश्न छाँटते समय सम्पूर्ण क्षेत्र का प्रतिनिधित्व हो सके ऐसे प्रश्न परीक्षा में सम्मिलित किये जाते हैं।

(५) विभेदकारिता—विभेदकारिता का अर्थ है उच्च योग्यता तथा निम्न योग्यता (अच्छे बालक तथा कमजोर बालक) वाले विद्यार्थियों में भेद करना। पूरी परीक्षा विभेदकारी होने के लिए उस परीक्षा का प्रत्येक प्रश्न विभेदकारी होना चाहिए। यदि कोई प्रश्न जिसका ठीक उत्तर अच्छे बालक भी दे सकते हों और कमजोर भी अथवा उसका ठीक उत्तर न अच्छे बालक दे सकें और न कमजोर तो यह प्रश्न विभेदकारी नहीं होगा।

(६) परीक्षा लेने में सरलता—परीक्षा लेने के लिए तैयार किये हुए नियम या आदेश आदि सीधे और आसान होने चाहिएँ जो आसानी से समझ में आयें तथा परीक्षा लेने के लिए किसी विशेषज्ञ की आवश्यकता न पड़े।

(७) तुलनात्मकता—परीक्षा में प्राप्त अंकों की तुलना करने के लिए जहाँ तक हो सके परीक्षा के साथ ही एक समानान्तर परीक्षा होनी चाहिए तथा सामान्य सूची (Norms) भी तैयार होनी चाहिए ताकि प्राप्त अंकों का ठीक प्रकार अनुमान तथा अर्थ लगाना आसान हो।

(८) उपयोगिता—उपयोगिता से तात्पर्य यह है कि उसका उपयोग करना तथा उसमें अंक देना एक सरल कार्य है। परीक्षा के प्रश्नों को समझने में परीक्षार्थी को कठिनाई नहीं होनी चाहिए और उनका उत्तर देने में भी अधिक समय नष्ट नहीं होना चाहिए। आजकल हर नवीन प्रकार की परीक्षाओं के उत्तर पत्रों को जाँचने के लिए कुञ्जी का उपयोग किया जाता है।

शैक्षणिक तथा मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं का वर्गीकरण

(अ) शैक्षणिक मापन :—शैक्षणिक परीक्षाओं में उनकी बनावट तथा रूप के आधार पर निम्नलिखित प्रकार हैं :—

(१) मौखिक परीक्षाएँ :—इन परीक्षाओं मे परीक्षार्थियो से प्रश्न मौखिक रूप से पूछे जाते हैं और जिनके उत्तर भी वह मौखिक रूप से ही देते हैं। छोटी कक्षाओं से जहाँ पाठ्यक्रम थोड़ा होता है, मौखिक परीक्षाएँ उपयोग मे आती हैं। ऊँची कक्षाओं मे भी ज्ञान की गहराई आकने के लिए ऐसी परीक्षाएँ काम मे आती हैं जिन्हे Viva-voce कहते हैं उदाहरणार्थ एम. ए. स्तर पर। ऊँची नौकरियों अथवा उच्च शैक्षणिक संस्था में प्रवेश हेतु साक्षात्कार लिया जाता है। वह मौखिक परीक्षा का एक प्रकार है।

(२) क्रियात्मक परीक्षाएँ :—क्रियात्मक परीक्षाओ मे परीक्षार्थी अपनी क्षमता अथवा अपने विषय की योग्यता का परिचय किसी कार्य को करके देते हैं। ऐसी परीक्षाएँ बुद्धि को मापने के लिए भी उपयोग मे आती हैं। इस प्रकार की क्रियात्मक परीक्षाएँ संगीत, सिलाई, गृह-शिल्प आदि विषयो मे होती हैं।

(३) लिखित परीक्षाएँ :—इन परीक्षाओं में लिखित रूप से पूछे गये प्रश्नों के उत्तर परीक्षार्थी लिखित रूप से ही देते हैं। इस प्रकार की लिखित परीक्षा के दो प्रकार हैं :—

(१) निबन्धात्मक परीक्षाएँ :—इस प्रकार की परीक्षाओ मे प्रश्नों का रूप कुछ इस प्रकार होता है कि परीक्षार्थी को पूछे गये विषय पर अथवा कथन पर टिप्पणी करनी पड़ती है या अपने विचार प्रकट करने पड़ते हैं या तर्क-वितर्क द्वारा उस कथन की पुष्टि या आलोचना करनी पड़ती है। परिणामतः पूछे गये विषय पर एक प्रकार का निबन्ध-सा बन जाता है।

(२) वैषयिक या वस्तुनिष्ठ परीक्षाएँ :—इस प्रकार की परीक्षा में प्रश्नों की संख्या अधिक और वह छोटे-छोटे होते हैं और उन प्रश्नों के उत्तर निश्चित होते हैं जो या तो पूर्णतया सत्य होते हैं या पूर्णतया असत्य होते हैं। अतः उनके अंक देते समय मतभेद का प्रश्न नही होता। इस प्रकार की वैषयिक परीक्षाएँ भी दो प्रकार की होती हैं :—

(i) प्रमापीकृत वैषयिक परीक्षा :—ये परीक्षाएँ किसी स्तर विशेष के लिए बनाई जाती हैं और किसी विशेष पाठ्यपुस्तक या पाठ्यक्रम पर आधारित नहीं होती अतः वह सामान्य प्रकृति की होती है और उस स्तर के विद्यार्थियो को किसी भी जगह दी जा सकती हैं।

(ii) अध्यापक द्वारा निर्मित वैषयिक परीक्षाएँ :—यह परीक्षाएँ अध्यापक द्वारा अपनी कक्षा तथा अपने द्वारा पढ़ाये गये विषय के पाठ्यक्रम पर आधारित होती हैं।

(आ) मनोवैज्ञानिक मापन :—शिक्षा के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक मापन के लिए मुख्यतः निम्नलिखित चार प्रकार की परीक्षाएँ ली जाती हैं :—

(1) बुद्धि परीक्षा :—बुद्धि परीक्षा भी दो प्रकार की होती है :—

(१) सामान्य बुद्धि परीक्षा :—मनोवैज्ञानिकों का मत है कि बुद्धि दो तत्त्वों से मिलकर बनी है—एक सामान्य बुद्धि और दूसरी विशिष्ट बुद्धि। सामान्य बुद्धि थोड़ी-बहुत मात्रा में सभी व्यक्तियों में विद्यमान होती है। सामान्य बुद्धि परीक्षा के दो प्रकार हैं :—

(क) व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षा तथा

(ख) सामूहिक बुद्धि परीक्षा।

(क) व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षा :—जो परीक्षा एक समय में एक ही व्यक्ति की बुद्धि मापने के लिए ली जाती है वह व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षा कहलाती है। जैसे टरमन और मेरिल की संशोधित बुद्धि परीक्षा। जितनी भी कार्यात्मक परीक्षाएँ होती हैं सब व्यक्तिगत परीक्षाएँ होती हैं। कार्यात्मक परीक्षाओं में बालक को लिखने-पढ़ने की आवश्यकता नहीं होती। उसे कुछ प्रयोगात्मक कार्य करने को कहा जाता है। उदाहरणार्थ रंगीन लकड़ी के टुकड़ों को इस प्रकार जोड़ना कि उनके द्वारा एक डिजाइन बन जाय या प्रतिरूप (Pattern) बन जाय। क्रियात्मक परीक्षाओं में परीक्षार्थी द्वारा की गई गलतियों को ध्यान में रखना होता है। अतः एक बार में एक परीक्षक केवल एक परीक्षार्थी की परीक्षा ले सकता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि सब व्यक्तिगत परीक्षाएँ कार्यात्मक परीक्षाएँ होती हैं। परन्तु कार्यात्मक परीक्षाएँ मात्र व्यक्तिगत परीक्षाएँ होती हैं, यह सत्य है।

व्यक्तिगत परीक्षाओं का उपयोग छोटे बच्चों पर करना चाहिए क्योंकि छोटे बच्चों को समूह में बिठाकर उनका ध्यान समान रूप से परीक्षा में आकृष्ट करना कठिन कार्य है और इससे प्राप्तांकों में प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त छोटे बच्चे लिखने-पढ़ने में इतने प्रवीण नहीं होते कि वे परीक्षक द्वारा दिये गये आदेशों को अच्छी प्रकार समझ सकें। उन्हें अन्य बालकों के साथ कक्षा में बैठ कर परीक्षा देने का ढंग भी नहीं आता है। अतः ऐसे बच्चों की परीक्षा सामूहिक रूप से नहीं लेनी चाहिए। उसके लिए व्यक्तिगत परीक्षा ही उपयोगी है। विशेष रूप से जब बालक भावुक है तब तो व्यक्तिगत परीक्षाएँ अधिक लाभदायक हैं। व्यक्तिगत रूप में परीक्षक परीक्षार्थी को परीक्षा देने के लिए उत्साहित करता रहेगा। वह परीक्षार्थी को परीक्षा का भय नहीं होने देगा। यह

सत्य है कि व्यक्तिगत परीक्षा में खर्च अधिक होता है तथा समय भी अधिक लगता है परन्तु ऐसी परीक्षाएँ बालक की बुद्धि का सही-सही पता लगाने में अधिक लाभदायक हैं। विशेष रूप से जब सामूहिक बुद्धि परीक्षा से हमें किसी सीमा पर की बुद्धि (Border line Case) वाले बालक के विषय में सन्देह उत्पन्न होता है तब इस सन्देह को दूर करने में व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षाएँ उपयुक्त हैं। व्यक्तिगत परीक्षा के लिए नियमित परीक्षा की आवश्यकता है।

(ख) सामूहिक बुद्धि परीक्षा :—यह वह परीक्षा है जो एक बार में पूरे समूह में उपयोग की जा सकती है। इन परीक्षाओं में सब परीक्षार्थियों के लिए बाह्य दशाएँ एक समान होनी हैं। यदि ध्वनि से किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न होती है तो वह ध्वनि सब परीक्षार्थियों के लिए समान होती है। इसी प्रकार सामूहिक बुद्धि परीक्षा में यदि विघ्न द्वारा प्राप्तांकों में प्रभाव पड़ता है वह सब परीक्षार्थियों के लिए पड़ता है। अतः सामूहिक बुद्धि परीक्षा बहुत अच्छी समझी जाती है। इसके अतिरिक्त थोड़े समय में अनेकों परीक्षार्थियों की परीक्षा लेना सम्भव होता है और इस प्रकार समय तथा श्रम की बचत होती है। सामूहिक परीक्षा के सब परीक्षार्थियों के लिए आदेश तथा निर्देश समान रूप से होते हैं। अतः व्यक्तिगत परीक्षा की अपेक्षा यह परीक्षा अधिक वैषयिक होती है।

सामूहिक परीक्षा की भी अनेक परिभाषाएँ हैं। सामूहिक परीक्षण में परीक्षक को यह ज्ञान करना कठिन हो जाता है कि समूह में परीक्षार्थियों की आन्तरिक दशाओं में क्या-क्या भिन्नताएँ हैं। लगभग आठ या दस वर्ष वाले बालकों के साथ तथा ऊपर के आयु वाले बालकों पर सामूहिक परीक्षा का उपयोग करना सम्भव है क्योंकि इस आयु में वह लिखना-पढ़ना जानते हैं। सामूहिक परीक्षा में परीक्षक को किसी विशेष परीक्षार्थी से एकान्त में मिलकर उसके सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी करना सम्भव नहीं होता।

सारांश, हमेशा व्यक्तिगत व सामूहिक बुद्धि परीक्षाओं का उपयोग कर व्यक्ति के बुद्धि सम्बन्धी भ्रम हो तो उसे दूर करना चाहिए।

बहुपदीय रूप परीक्षा :—सामूहिक बुद्धि परीक्षा दो रूपों में विभाजित की जा सकती है। (१) बहुपदीय रूप तथा (२) उप-परीक्षिका रूप।

(१) बहुपदीय रूप वह है जिसमें परीक्षा-पत्र में प्रश्न उप-परीक्षिका (Sub-test) में विभाजित नहीं हों। इसमें सब प्रश्न केवल एक साथ रख दिये जाते हैं और उन सबको करने का एक निश्चित समय निर्धारित कर दिया

जाता है। इस परीक्षा का यह गुण है कि परीक्षार्थी अपनी सुविधा के अनुसार प्रश्न हल करता चला जाता है। उसे बीच-बीच में रोका नहीं जाता।

(२) उप-परीक्षिका रूप—इस प्रकार की परीक्षा कुछ उप-परीक्षिकाओं में विभाजित रहती है। प्रत्येक उप-परीक्षिका में एक प्रकार के प्रश्न रखे जाते हैं। जैसे—एक उप-परीक्षिका में स्मृति सम्बन्धी प्रश्न होंगे तो दूसरी उप-परीक्षिका में तर्क सम्बन्धी प्रश्न होंगे आदि। प्रत्येक उप-परीक्षिका को हल करने के लिये अलग-अलग समय निश्चित हो सकता है। प्रत्येक परीक्षिका का समय समाप्त होने पर उसे रोका जाता है और आगे की उप-परीक्षिका के आदेश दिये जाते हैं।

(३) शक्ति परीक्षा—एक शक्ति परीक्षा वह है जो किसी क्षेत्र में व्यक्ति की उस क्षेत्र सम्बन्धी शक्ति का मापन करे। सामूहिक बुद्धि परीक्षाएँ या तो शक्ति परीक्षा के रूप में बनाई जा सकती है या गति (Speed test) परीक्षा के रूप में। शक्ति परीक्षा में प्रश्न सरल से कठिन के क्रम में रखे जाते हैं और उनको हल करने के लिये कोई समय नहीं होता। किसी व्यक्ति में निश्चित सीमा से ऊपर के प्रश्न करने की शक्ति नहीं होगी, उसे कितना ही समय दिया जाय वह प्रश्नों को हल नहीं करेगा।

गति परीक्षा :—सामूहिक बुद्धि परीक्षा गति परीक्षा हो सकती है। गति परीक्षा में सम्पूर्ण परीक्षा के प्रश्न समान कठिनाई के हों और उनको हल करने के लिये एक निश्चित समय होता है।

वर्तमान में शक्ति परीक्षा तथा गति परीक्षा का मिश्रण उपयोग में लाया जाता है अर्थात् इस प्रकार की परीक्षा में प्रश्न सरल-से लेकर कठिन क्रम में रखे जाते हैं एवं परीक्षा के प्रश्नों को हल करने के लिये निश्चित समय निर्धारित होता है।

शाब्दिक परीक्षा :—बुद्धि परीक्षा या तो शाब्दिक या अशाब्दिक हो सकती है। शाब्दिक परीक्षा में शब्दों का उपयोग किया जाता है तथा इन परीक्षाओं का उपयोग करने के लिये परीक्षार्थी को भाषा का ज्ञान होना चाहिए। शाब्दिक परीक्षाओं में संख्याओं का भी उपयोग किया जाता है। शाब्दिक परीक्षाओं में सामान्य योग्यता (g. factor) अधिक मात्रा में होती है। शाब्दिक परीक्षा के प्रश्नों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :—

(१) निम्नलिखित शब्दों में से ऐसा कौन-सा शब्द है जिसका अन्य शब्दों से मेल नहीं खाता ? उसके नीचे रेखा खींचिये।

कोट, पेंट, टोपी, सिर, कमीज।

(२) निम्नलिखित मे कोष्ठ के अन्दर कौन-सी संख्या आवेगी ? उसे लिखिये।

२, ४, ७, ६, १२, १४, (   )।

इसी प्रकार के अनेकों प्रश्न बनाये जा सकते हैं।

अशाब्दिक परीक्षा :—इन परीक्षाओं मे शब्दों का प्रयोग नही होता जैसे —मनुष्य या जानवर का चित्र बनवाना या किसी दिये हुए चित्र मे कोई गलती ज्ञात करना आदि।

कार्यात्मक परीक्षाएँ भी अशाब्दिक परीक्षाएँ (Performance test) होती हैं। नैशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ इन्डस्ट्रिअल सायकालॉजी द्वारा निर्मित "७०/२३" तथा "फॉर्म रिलेशन्स" अशाब्दिक परीक्षाएँ हैं।

कुछ अशाब्दिक परीक्षाएँ सामान्य (g) योग्यता का मापन करती हैं। परंतु अधिकाश शाब्दिक परीक्षाओं में सामान्य तथा विशेष (g and k) योग्यताओं का मिश्रण ही होता है।

अशाब्दिक परीक्षा का उपयोग उस समय भी किया जाता है जब परीक्षार्थी मे भाषा का विकास नही हुआ है तथा उसकी विद्यालय की पढ़ाई भी उचित ढंग से नही हुई है।

प्रमापीकृत परीक्षा का अर्थ

"Standardization of a test means the establishments of norms for interpretation of the results it yields"

—Mursell.

प्रमापीकृत परीक्षाएँ वह परीक्षाएँ हैं जो किसी विशेष प्रमाण या स्तर तक ला दी गई हैं। यह परीक्षाएँ किसी आयु अथवा कक्षा के बालकों के अनुसार बनाई जाती हैं जैसे कक्षा ८ के लिये इतिहास परीक्षा का प्रमापीकरण (Standardization) करना। अर्थात् ऐसी परीक्षा मे प्रश्न ८वी कक्षा के स्तर से कम के भी हो सकते हैं अर्थात् ८वी कक्षा के लिये सरल और ६ कक्षा के उच्च स्तर के भी हो सकते हैं अर्थात् उस कक्षा के लिये बहुत कठिन। जब यह परीक्षा न तो उस कक्षा के लिये आसान होती है और न कठिन तो हम कहते हैं कि परीक्षा ठीक प्रमाण पर ला दी गई है अर्थात् उसका प्रमापीकरण कर दिया गया है।

प्रमापीकृत परीक्षाएँ वस्तुनिष्ठ या वैषयिक होती हैं और उनके सामान्यक तैयार किये जाते हैं।

उक्त विभिन्न व्याख्याओं के आधार पर प्रमापीकृत परीक्षा की निम्नलिखित विशेषताएँ दिखाई देती हैं :—

(२) यह किसी विशेष आयु, कक्षा अथवा स्तर के लिए बनी होती है।

(३) इसमें सभी परिस्थितियाँ जैसे परीक्षा भवन, परीक्षण विधि, निर्देश, मूल्यांकन, परीक्षाफल, व्याख्या आदि सबके लिए समान और एक प्रकार की होती हैं।

(४) इसमें मूल्यांकन विधि व परीक्षाफल की व्याख्या करने की विधि पूर्व निश्चित होती है। इन परीक्षाओं के लिए उत्तरों की कुंजी, सामान्यक और परीक्षाफल में दिये जाने वाले निर्देश परीक्षा के साथ-साथ ही तैयार किए जाते हैं।

परीक्षा के पूर्व तैयारी

वास्तविक रूप मे परीक्षा लेने से पूर्व परीक्षक को कुछ अन्य बातों पर भी ध्यान देना चाहिए। ये बातें निम्नलिखित हैं :

(१) प्रमापीकृत स्थिति—हर मनोवैज्ञानिक परीक्षा देने के लिए विशेष प्रकार के निर्देश हैं जिनके अनुसार ही परीक्षक को परीक्षा लेना अत्यन्त आवश्यक है। हर प्रमापीकृत परीक्षा का अपना-अपना मेनुअल होता है। परीक्षा लेते समय सम्बन्धित मेनुअल में दिये गये निर्देशों के अनुसार ही कार्य करना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि किसी परीक्षा के लिए ४० मिनट का समय निर्धारित है, ऐसी स्थिति मे परीक्षक को चाहिए कि वह ४० ही मिनट दे, न कम न ज्यादा। इसके लिए स्टॉप वाच या सैकिण्ड की सुई वाली घड़ी का ही उपयोग करना अधिक हितकर है।

(२) प्रेरक—यहाँ प्रेरक का अर्थ है विद्यार्थियों को परीक्षा में दिये हुए प्रश्नों को अधिकाधिक सही करने हेतु प्रोत्साहित करना। अतः परीक्षा के उद्देश्य, उसकी उपयोगिता से बालकों को अवगत कराना परीक्षक के लिए आवश्यक है। परीक्षा का किस उद्देश्य से निर्माण किया गया है यह परीक्षा के मेनुअल में दिया हुआ होता है अतः मेनुअल का अध्ययन करना परीक्षक के लिए आवश्यक है। जहाँ पर परीक्षा के मेनुअल में इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा होता वहाँ निम्नलिखित प्रारम्भ उपयुक्त होगा :

"यह एक बुद्धि परीक्षा है। इस परीक्षा में पूछे गये प्रश्न तुम्हारी किसी पुस्तक आदि से नही लिए गये हैं। इसमें सभी प्रश्न ऐसे हैं जिनके उत्तर तुम स्वयं सोच समझ कर अपनी बुद्धि की सहायता से दे सकते हो।"

जब कोई छात्र परीक्षा से पूर्व कोई प्रश्न पूछे तो परीक्षक को उत्तर देकर उसकी जिज्ञासा शांत करनी चाहिए। विद्यालय या संस्था प्रधान को चाहिए कि मनोवैज्ञानिक परीक्षा लेने का कार्य ऐसे व्यक्ति को दिया जाये कि जिसके प्रति छात्रों के मन में उपयुक्त सम्मान की भावना हो।

(३) परीक्षा-तिथि निर्धारण :—शैक्षिक सत्र के आरम्भ में, मध्य में या अन्त में कक्षा की मनोवैज्ञानिक परीक्षाएँ लेना चाहिए। इस सम्बन्ध में निर्णय परीक्षक को लेना चाहिए तथा तिथि भी निश्चित करनी चाहिए और छात्रों को इस सम्बन्ध में सूचना भी देनी चाहिए। किन्ही दो परीक्षाओं के बीच बच्चों को पर्याप्त समय दीजिये जिससे वे थकें नही।

(४) परीक्षा-कक्ष का चुनाव :—परीक्षा का कमरा काफी बड़ा होना चाहिए ताकि विद्यार्थी आपस में नकल न कर सकें और न ही बातचीत कर शोर कर सकें। विद्यालयों में वर्तमान कमरों का आकार ध्यान में रखते हुए लगभग २५-३० या २०-२५ विद्यार्थी ही एक कमरे में बैठाये जाने चाहिएँ। यह सावधानी सामूहिक बुद्धि परीक्षा में रखनी आवश्यक है क्योंकि एक बार में ४-५ उत्तरों को देखना विद्यार्थियों के लिए कठिन कार्य नही है अतः वे नकल कर सकते हैं। परीक्षक जो परीक्षा का निरीक्षण भी करेगा कक्षा के मध्य में छात्रों की ओर मुह करके खड़ा होना चाहिए। अच्छा हो, परीक्षा लेते समय हमेशा एक कक्ष में दो व्यक्ति हों जिनमें से एक परीक्षा ले तथा दूसरा निरीक्षण करे।

(५) परीक्षा सामग्री की गणना :—परीक्षा लेने के पूर्व तथा परीक्षा समाप्त होने पर परीक्षा सामग्री सावधानी से गिन लेनी चाहिए तथा परीक्षा-पुस्तिकाओं के प्रत्येक पन्ने को अच्छी प्रकार देख लेना चाहिए कि कहीं विद्यार्थियों ने चिह्न या प्रश्नों के उत्तर तो नहीं लिखे हैं। यदि कहीं पर कोई निशान आदि दिखाई दे तो उसे मिटा देना चाहिए, तभी उन परीक्षा-पुस्तिकाओं का दूसरी बार उपयोग करना चाहिए। यह सावधानी हर बार परीक्षा लेने के पूर्व ध्यान रखना चाहिए। विद्यार्थियों को केवल पेंसिल का ही प्रयोग करने का आग्रह करना चाहिए क्योंकि प्रश्नों के उत्तर लिखते समय कोई गलती हो गई हो तो उसे ठीक करते समय आसानी होती है। बालकों को ठीक-ठीक समझा

दिया जाना चाहिए कि वे प्रश्न-पुस्तिका में कुछ भी न लिखें तथा किसी भी प्रकार का निशान न करें।

(६) परीक्षा लेने के पूर्व निर्देश पढ़ना :—परीक्षक को चाहिए कि परीक्षा के मेनुअल में दिये हुए निर्देशों को अच्छी प्रकार समझ ले तथा उसे हर बार पढ़ना भी आवश्यक है। क्योंकि मेनुअल में दिये हुए प्रमापीकृत निर्देश से वह भिन्न न हो जाय। न कुछ अपनी ओर से जोड़ा जाय और न घटाया जाय। यदि निर्देशों को दोहराना ही पड़े तो ठीक मेनुअल के अनुसार अक्षरशः दोहरा दिया जाय।

(७) परीक्षा का समय :—प्रत्येक परीक्षा की अवधि भिन्न-भिन्न होती है। परीक्षा का समय इसके मेनुअल में अंकित रहता है, उसकी पूर्णतः पाबन्दी बहुत ही जरूरी है। अतः स्टॉपवाच या सेकिण्ड के हाथ वाली घड़ी बड़ी आवश्यक है।

(८) परीक्षा के समय होने वाली बाधाएँ :—देर से आनेवाले छात्रों को परीक्षा में शामिल नहीं किया जाय। अतः जहाँ तक हो सके, विद्यार्थियों को निश्चित समय से पूर्व आने का आग्रह करना चाहिए। विद्यार्थियों को जो कुछ भी सूचना देनी है, परीक्षा के आरम्भ करने के पूर्व देना चाहिए। ऐसा न करने से विद्यार्थियों का समय नष्ट होता है एवं इसका परिणाम उनके प्राप्तांक पर पड़ता है।

(९) परीक्षा की समाप्ति :—कक्षा के विद्यार्थियों की उत्तर देने की गति भिन्न-भिन्न होती है। प्रखर बुद्धि वाले छात्र हमेशा समय समाप्त होने के पहले ही परीक्षा के प्रश्न कर लेते हैं तथा कुछ अन्य विद्यार्थी समय पूरा होने के बाद तक भी पूरे प्रश्न नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति में मेनुअल में दिये हुए निर्देशों का दृढ़ता से पालन करना चाहिए। जब परीक्षा का समय समाप्त होता है तब परीक्षक कहे, "समय समाप्त हो गया, लिखना बन्द कर दीजिये।" उस समय परीक्षक तथा अन्य निरीक्षक तुरन्त परीक्षा-पुस्तिकाएँ तथा उत्तर-पत्र इकट्ठा करने का कार्य करेंगे। इसके उपरान्त परीक्षा-पुस्तिकाएँ तथा उत्तर-पत्रों की ठीक से गणना कर लीजिए तदुपरान्त ही विद्यार्थियों को कक्षा के बाहर जाने दीजिये।

परिशिष्ट (क)

पुस्तक में प्रयुक्त अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी पर्याय

Ability=योग्यता
Adjustment=समायोजन
Advancement=उन्नति
Aim=उद्देश्य
Attitude=अभिवृत्ति
Beneficial=लाभदायक
Capacity=क्षमता
Characteristic=लक्षण
Choose=चुनना
Competent=योग्य
Continuous=निरन्तर, प्रवाहित
Co-ordinate=समन्वित
Counselee=परामर्श प्राप्तकर्त्ता
Counselling=परामर्श
Counsellor=परामर्शक या परामर्शदाता
Develop=विकास करना
Dull=मन्द बुद्धि
Educational=शैक्षिक या शैक्षणिक
Gifted=प्रतिभावान
Guidance=निर्देशन या मार्गदर्शन
Identification=पहचान
Individual differences=व्यक्तिगत भिन्नताएँ
Importance=महत्त्व
Interest=रुचि
Nature=स्वभाव
Non-Verbal=अशाब्दिक
Observation=निरीक्षण
Occupation=व्यवसाय
Opportunity=अवसर या सुविधाएँ
Parent=अभिभावक
Point out=इंगित करना
Prepare=तैयार होना
Priceless=मूल्यवान
Process=प्रक्रिया
Progress=विकास करना
Psychological=मनोवैज्ञानिक
Regularity=नियमितता
Requirement=आवश्यकता

Solve=हल करना
Special=विशेष
Standardised=प्रमापीकृत
Standpoint=दृष्टिकोण
Test=परख या परीक्षा
Testing=जाँच
Training=प्रशिक्षण
Type=प्रकार
Unsuitable=अयोग्य
Variety=विभिन्नता
Verbal=शाब्दिक
Vocational=व्यावसायिक

परिशिष्ट (ख)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

nett Margaret E.—Guidance in Groups.

ımer Lawrance, M. and Shostrom E.—Dyna-
; of the Counsellieg process.

ord P. Frochilith—Guidance Services in
ools.

w, L.D. & Aliee Crow—Principles and Prac-
of Guidance.

:kson, Clifford E.—A Practical Hand-Book
School Counsellors.

es Arthur, J.—Principles of Guidance.

app, Robert H.—Practical Guidance Methods.

ers, George E.—Principles and Techniques of
:ational Guidance.